
प्रकाशन

प्रकाशन

प्रकाशन


अनुसन्धान
प्रकाशन

अनुसन्धान
प्रकाशन

अनुसन्धान
प्रकाशन


अनुसन्धान
प्रकाशन

अनुसन्धान
प्रकाशन

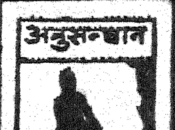
अनुसन्धान
प्रकाशन


अनुसन्धान
प्रकाशन

अनुसन्धान
प्रकाशन

अनुसन्धान
प्रकाशन


अनुसन्धान

अनुसन्धान

अनुसन्धान


र्ग :
हूँ ।
निष्पन्न
प-

श्रद्धेय डा० श्री माता प्रसाद जी
गुप्त को सादर और अभिवादन,

— [illegible]
५.११.५८.

मानस : बालकाण्ड के स्रोत

श्रीशकुमार एम० ए०
हिन्दी-विभाग, डी० एन० जैन कॉलेज
जबलपुर

हेमाभ प्रकाशन
काशी

प्रकाशक : हेमाभ प्रकाशन, सी० ११/२ चेतगंज, वाराणसी।
मुद्रक : मायपति प्रेस, वाराणसी ।
आवरण : बी० गुरू
संस्करण : प्रथम—११००
अक्तूबर, १९५७
मूल्य : पाँच रुपये

जिनकी ही प्रेरणा और आशीर्वाद का

फल यह पुस्तक है उन्हीं

देव-तुल्य बाबू जी को

श्रद्धा पूर्वक समर्पित

निवेदन

तुलसी-साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ अनुसन्धित्सु विद्वानों के मन में यह कल्पना दृढ़ होती गई है कि मानस का अधिकांश अपने पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों के आधार पर निर्मित हुआ है। 'नाना-पुराण निगमागम संमतम्' के अन्तःसाक्ष्य से भी यही प्रमाणित होता है।

राम सम्बन्धी प्रचुर साहित्य संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में विद्यमान है। मानस को दृष्टि में रख कर इन ग्रंथों के अनुशीलन से मेरी यह धारणा पुष्ट होती गई है कि तुलसी ने मूल कथाओं, प्रासंगिक कथाओं, संवादों, यहाँ तक कि किसी विशेष स्थल की विशेष उक्ति को भी अपनी रुचि के अनुसार संकलित और अनुवादित कर लिया है।

पर सहस्राब्दियों में लिखे गए राम सम्बन्धी विपुल प्रकाशित-अप्रकाशित विशाल साहित्य-भण्डार के परिवेश में मानस के शोध-कार्य और अपने प्रबन्ध की सीमा-रेखा के बीच निश्चित संगति न देख मैंने मानस के प्रथम सोपान (बाल-काण्ड) के मूल स्रोतों की विवेचना को ही अपना लक्ष्य बनाया।

मानस की भक्ति, साहित्य या दर्शन के विवेचन को दृष्टि से आलोचनाएँ तो बहुत हुईं। किन्तु स्रोत के अनुसन्धान की दिशा में कोई व्यवस्थित कार्य नहीं हो सका है। इस दृष्टि से प्रथम प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मानस के जिन कतिपय आधार-ग्रन्थों को आधार बनाया गया है, वे अधिकांश संस्कृत भाषा के मुद्रित ग्रन्थ हैं। यत्र-तत्र अपभ्रंश की सामग्री का भी उपयोग किया गया है। तुलसी के कवि-व्यक्तित्व के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए भी मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कवि ने किस प्रकार समूचे राम-साहित्य की बिखरी हुई रूप-सामग्री को एक निश्चित उद्देश्य के वृत्त में घेर कर राम के लोक-मङ्गल रूप को प्रस्तुत किया।

इस अध्ययन के अन्तर्गत बाल-काण्ड की कथाओं को आधिकारिक, प्रासंगिक और हेतु तीन वर्गों में बाँट कर उनके उद्गम का विचार किया गया है। प्रतापभानु को छोड़कर शेष सभी कथाएँ पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों पर आश्रित हैं। कवि ने इन कथाओं को अपने उद्देश्य के अनुरूप यथारुचि

मोड़ने में पूरी स्वतंत्रता से काम लिया है। तुलसी के लगभग सभी आध्यात्मिक विचार बाल-काण्ड में ही केन्द्रित हैं। इन विचारों के मूल उत्सों की शोध के द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि मानसकार ने पूर्ववर्ती आध्यात्मिक चिन्तन को शत प्रतिशत स्वीकार करते हुए भी अपनी वैयक्तिक भाव-धारा के अनुरूप उनका ग्रथन किया है। इस प्रकार तुलसी के आध्यात्मिक विचारों के स्रोत के साथ-साथ उनकी वैयक्तिक, आध्यमतमिक मनोदृष्टि का भी स्पष्टीकरण हो गया है। संवादों पर काम करते समय सभी प्रमुख संवादों के स्रोत ढूंढ़ लिए गए हैं। शिव-चरित के तो सभी संवाद शिवपुराण के लगभग शब्दशः अनुवाद हैं।

इस अध्ययन से कवि के मधु-संचय की तीव्र प्रतिभा का भी पता चलता है। वर्णन-प्रसंगों के मूल स्रोतों की शोध कर स्पष्ट कर दिया गया है कि कवि ने किस प्रकार संस्कृत-साहित्य के लालित्य को जन-भाषा में ही रुचि रखनेवालों के लिए उपलब्ध कर दिया। सुभाषित और सूक्तियों के मूल-स्रोत द्वारा इस श्रद्धा के लिए काफी स्थान है कि कवि ने संस्कृत वाङमय की अत्यन्त मार्मिक उक्तियों को एक साथ एक ही ही ग्रन्थ में सँजो कर भारतीय काव्य की उक्ति-वैचित्र्य का रस एकत्र कर दिया है।

प्रबन्ध को संक्षिप्त रूप देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि जो कुछ लिखा जाय वह प्रामाणिक और स्पष्ट हो। फिर भी यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उसका दायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

विमत-प्रतिवचन में कहीं यदि दुर्विनीत भाषा का प्रयोग हो गया हो और आर्ष-वचनों की निरुक्ति और मीमांसा में वितथाख्यान हो गया हो तो मैं क्षमा चाहूँगा।

इस प्रबन्ध में मानस की जिस प्रति से उद्धरण दिए गए हैं वह गीता प्रस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित और श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित है।

—श्रीशकुमार

अनुक्रमणिका

कथा

बाल-काण्ड की कथाएं मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटी जा सकती हैं। आधिकारिक कथा के अन्तर्गत राम-जन्म से राम-विवाह तक की कथा आती है। शिव और शक्ति की कथा शिल्प की दृष्टि से प्रासंगिक कथा कही जायगी। मूल भाव-धारा से सम्बद्ध होने पर भी उसका कथात्मक तंत्र प्रासंगिक कथाओं के प्रकार का ही है। रामावतार के हेतु विभिन्न वर और शापों से सम्बद्ध कथाओं को हेतु-कथा की संज्ञा दी जा सकती है। बाल-काण्ड के कथा-स्रोतों पर छानबीन करने के लिए क्रमशः आधिकारिक, प्रासंगिक तदनन्तर हेतु-कथाओं के मुख्य उद्गमों का विवेचन किया जा रहा है।

अधिकारिक कथा

दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ

बाल-काण्ड के १८६-६० दोहों में जहाँ से मानस की अधिकारिक कथा-वस्तु प्रारम्भ होती है, दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ का वर्णन है। पुत्रैषण से व्याकुल दशरथ ने एक बार अपने कुल-गुरु वसिष्ठ से अपने दुःख का निवेदन किया। वसिष्ठ ने शृंगी ऋषि को बुलाकर उनके द्वारा पुत्र-कामेष्टि यज्ञ कराया। मुनि के आहुति देने पर अग्निदेव हाथ में चरु लेकर प्रकट हुए और उन्होंने दशरथ से कहा कि तुम इस हविष्यान्न का यथेच्छ विभाग कर अपनी पत्नियों में बाँट दो। दशरथ ने आधा भाग कौशल्या को दिया और शेष आधे के दो विभाग किए। उसका एक भाग उन्होंने कैकेयी को दिया। शेष जो बच रहा उसके फिर दो विभाग हुए और दशरथ उसे कौशल्या और कैकेयी के हाथ में रख अर्थात् उनकी अनुमति लेकर सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार तीनों पत्नियाँ गर्भवती हुईं।

वाल्मीकि रामायण में पहले दशरथ के अश्वमेध यज्ञ का ही उल्लेख था—बाद में पुत्रेष्टि-यज्ञ का वर्णन भी संपृक्त कर दिया गया। डा० कामिल बुल्के ने वाल्मीकि रामायण के पुत्रेष्टि-यज्ञ से सम्बद्ध समस्त प्रसंग को प्रक्षिप्त होने के तर्क दिए हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण के उस प्रक्षिप्त अंक के सम्बन्ध में जिसमें दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है डा० बुल्के लिखते हैं—

"विष्णु दशरथ के पुत्र के रूप में रावण का वध करने की प्रतिज्ञा करते हैं और पुत्रेष्टि-यज्ञ की अग्नि में प्रकट होकर दशरथ को पायस प्रदान करते हैं।"[2] परन्तु वाल्मीकि रामायण के उस प्रक्षिप्त सर्ग में पुत्रेष्टि-यज्ञ की अग्नि में विष्णु के नहीं अपितु एक दिव्य पुरुष के प्रकट होने का उल्लेख है। वह काला था; लाल वस्त्र धारण किए हुए था और उसका मुख भी लाल था (सम्भवतः यह प्रतीक अग्नि-देवता

१—डा० कामिल बुल्के: 'रामकथा', पृ० २५७

२—वही, पृ० २६७

का है)। ❀ उस पुरुष में उत्तम लक्षण विद्यमान थे। उसने दशरथ से कहा कि मैं प्रजापति ब्रह्मा के यहाँ से आया हूँ और पायस के गुणों का उल्लेख करते हुए उसने दशरथ को पायस प्रदान कर दिया।[१]

भट्टि-काव्य[२] में पुत्रेष्टि-यज्ञ के अवसर पर किसी देवता या दिव्य पुरुष के प्रकट होने का उल्लेख नहीं है। वहाँ दशरथ की पत्नियाँ हुतोच्छिष्ट खाती हैं। नृसिंह पुराण[३], अध्यात्म रामायण[४] और आनन्द रामायण[५] में पुत्रेष्टि-यज्ञ की अग्नि में अग्निदेव के प्रकट हो कर पायस-प्रदान करने का उल्लेख है। तुलसीदास ने भी अध्यात्म रामायण के आधार पर यज्ञ में अग्निदेव के ही प्रकट होने का वर्णन किया है। मानस के पुत्रेष्टि-यज्ञ के उपक्रम से उपसंहार तक का पूरा वर्णन हूबहू अध्यात्म रामायण से सादृश्य रखता है।[६] दोनों में अन्तर केवल इतना

❀ कोष्ठक में दी हुई टिप्पणी लेखक की है।

१—वाल्मीकि रामायण, बाल०, १६। ११—२१।

२—भट्टिकाव्य १।१३

३—नृसिंह पुराण, अध्याय ४७

४—अध्यात्म रामायण, बाल० १।३

५—आनन्द रामायण, सारकाण्ड, सर्ग ३।

६—मानस—बाल०, १८६

एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला।
चरन लागि करि बिनय बिसाला॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ।
कहि वसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥

अध्यात्म रामायण—बाल०, सर्ग ३, श्लोक २–४

सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा।
वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत्॥
स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्व लक्षणलक्षिताः।
पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते॥

ही है कि मानस में वसिष्ठ स्वयं शृंगी ऋषि को बुलाते हैं और अध्यात्म रामायण में वसिष्ठ दशरथ से कहते हैं कि तुम ऋष्यशृंग को बुलाकर हमारे साथ पुत्रेष्टि-यज्ञ का अनुष्ठान करो।

पायस—वितरण में अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण, रघुवंश एवं रामचरितमानस में विभिन्नता है। 'अध्यात्म रामायण के अनुसार दशरथ ने हवि को महारानी कौशल्या और कैकेयी में आधा-

---

ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव।
चत्वारः सत्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः॥

× × ×

मानस—बाल०, १८९

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥
जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा।
सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई।
जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥

अध्यात्म रामायण—बाल०, ३।५-९

शान्ताभर्त्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम्।
अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर॥
तथेति मुनिमानीयं मन्त्रिभिः सहितः शुचिः।
यज्ञकर्मसमारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः॥
श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बनदप्रभः।
पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट्॥
गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम्।
लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः॥
इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः।
ववन्दे मुनि शार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः॥

आधा बांट दिया। जब सुमित्रा भी चरु की इच्छा से वहाँ आई तो कौशल्या और कैकेयी ने अपना आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे दिया।

कौसल्यायै सकैकेय्ये अर्धमर्धं प्रयत्नतः।
ततः सुमित्रा संप्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् ॥
कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता।
कैकेयी च स्वभागार्द्धं ददौ प्रीतिसमन्विता ॥[1]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथ ने पायस का आधा भाग कौशल्या को दिया और आधे का आधा भाग अर्थात् चतुर्थांश सुमित्रा को दिया और बचे हुए का आधा भाग कैकेयी को दिया। अवशिष्ट पायस को राजा ने पुनः सुमित्रा को दे दिया।

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्द्धादर्द्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥
कैकेय्ये चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायस्यामृतोपमम् ॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥[2]

कालिदास ने रघुवंश में बिलकुल भिन्न प्रकार से पायस-वितरण का उल्लेख किया है—

अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा।
अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ॥
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे ॥[3]

तुलसी ने इनमें से किसी का भी अनुसरण नहीं किया है, बल्कि कुछ अंश में वाल्मीकीय और कुछ अंश में आध्यात्म रामायण और रघुवंश का सामाञ्जस्य करने का प्रयत्न किया है—

अर्ध भाग कौसल्याहि दीन्हा।
उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥

---

१. अध्यात्म रामायण, बाल० ३ । १०—१२

२. वाल्मीकि रामायण, बाल० १६ । २६—२६

३. रघुवंश १० । ५५—५६

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ ।
रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि ।
दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥[१]

राम का जन्म और आरम्भिक कृत्य

जन्म-तिथि

रामचरितमानस में मधुमास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि और अभिजित् नक्षत्र में राम का जन्म होना कहा गया है—

नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।
सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥[२]

प्रचलित वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में राम और उनके भाइयों की जन्म तिथि चैत्र की नवमी बताई गई है। उसके अनुसार कर्कट लग्न में ग्रहपञ्चकों के उच्च स्थान में रहने रहने पर नवमी तिथि को रामचन्द्र का जन्म होता है। किन्तु वहाँ शुक्ल पक्ष का उल्लेख नहीं है।[३]

पद्म पुराण[४] और अध्यात्म रामायण[५] में भी उसी तिथि का उल्लेख किया गया है। मानस और अध्यात्म रामायण के जन्म-तिथि-निरूपण में अन्तर इतना ही है कि अध्यात्म रामायण अभिजित नक्षत्र के बदले कर्कट पुनर्वसु नक्षत्र, ऋक्ष लग्न तथा ग्रहपञ्चक को उच्च स्थान में बतलाती है।[६]

१—मानस, बाल० १६०

२—वही, बाल० १६१

३—ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतुनां षट् समत्ययुः ।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥
बाल० १८।८

४—पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, अध्याय २६६

५—अध्यात्म रामायण, बाल०, ३।१४-१५

६—अध्यात्म रामायण, १ । ३ । १४—१५
मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे ।
पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥

राम-जन्म के अवसर पर अलौकिक लीलाएं

बालक राम-जन्म लेते ही अपनी माता कौशल्या को अपना विष्णु-रूप दिखलाते हैं। वे विष्णु-रूप में माता के सामने अपने सभी आयुधों के साथ अवतीर्ण होते हैं।[1]

प्रक्षेपों से स्फीत वाल्मीकि रामायण राम को विष्णु का अवतार मानते हुए भी उनका जन्म अप्राकृत नहीं बतलाती। राम के विषय में इस प्रकार का वर्णन अध्यात्म रामायण में मिलता है।[2] 'अध्यात्म रामायण' के इस वर्णन का आधार भागवत पुराण है[3] जहाँ बालक कृष्ण वसुदेव तथा देवकी को अपना विष्णु-रूप दिखलाते हैं। राम के सम्बन्ध में इस प्रकार का वर्णन पद्मपुराण,[4] आनन्द रामयण[5] और राम-रहस्य[6] में भी मिलता है।

मेषं पूषणि संप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले।
आविरासीजगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥

१—मानस, बाल०, १६२, छंद १

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन वनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

२—अध्यात्मरामायण, बाल०, ३। १६—१७

नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥

३—श्रीमद्भागवत—१०। ३। ६

तमद्भुतं बालकम्बुजेक्षणं—
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं—
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥

४—पद्म पुराण, उत्तरकाण्ड, अध्याय २६६।

५—आनन्द रामायण, सारकाण्ड, सर्ग ३।

६—राम-रहस्य, सर्ग ३।

तुलसीदास का वर्णन 'अध्यात्म रामायण' के निकट है। अध्यात्म रामायण के अनुसार रामचन्द्र पहले विष्णु के रूप में अवतीर्ण हुए और कौशल्या के गर्भ से जन्म लेने का कारण बतलाया, तत्पश्चात् बालक होकर रोने लगे। बालक होने के पूर्व कौशल्या ने उन्हें देखकर बहुत कुछ स्तुति भी की थी। ऐसा ही वर्णन तुलसी भी करते हैं और इस स्थल पर अध्यात्म-रामायण का पूरा-पूरा अनुसरण करते हैं। मानस में कौशल्या द्वारा की गई राम की स्तुति पर अध्यात्म-रामायण का पूरा प्रभाव है।

प्रो० जगन्नाथ राय एम० ए० अपनी पुस्तक 'मानस की कथा वस्तु' पृ० ३१ पर लिखते हैं—

"अध्यात्म रामायण में माता की प्रार्थना के बिना ही राम विष्णु-रूप बन गए हैं, किन्तु मानस में कौशल्या को शिशु-रूप में प्रकट होने की उनसे प्रार्थना की गई है।"

आश्चर्य है, रायसाहब ने यह बात कैसे लिख दी जब कि 'अध्यात्म रामायण' में कौशल्या स्पष्ट शब्दों में राम से कहती हैं कि हे विश्वात्मन! अपने इस अलौकिक रूप का उपसंहार कीजिए और कोमल बाल-रूप धारण कीजिए—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम्।
ललितालिङ्गनालपैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः॥[1]

तुलसी ने इस श्लोक का छायानुवाद सा कर दिया है। देखिए,

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥

अतः सिद्ध है कि इस प्रकरण में मानस और अध्यात्म रामायण में कोई अन्तर नहीं है।

तुलसी ने राम-जन्म का वर्णन बड़े अनुराग से किया है और यहाँ तक कह दिया है कि स्वयं सूर्य भगवान् तथा उनके रथ के घोड़े भी अयोध्या का यह उत्सव देखकर थक गए थे, इसलिए राम-जन्म का दिन एक महीने का हो गया था—

---

[1] —अध्यात्म-रामायण, बाल ०३।२६

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन विधि होइ ॥

बाल-काण्ड दोहा, १९५

यह बात न तो अध्यात्म रामायण में मिलती है और न अन्य किसी रामोपाख्यान में । हाँ ! कालिदास ने 'रघुवंश' में इस प्रकार का वर्णन किया है कि बालक के तेज से रात्रि का अन्धकार नष्ट हो गया ! उस अप्रतिम तेजस्वी रघूद्वह रूपी प्रदीप के प्रकाश से रक्षा-गृह के प्रदीप मानों मन्द पड़ गए ।[1]

अथाऽग्यमहिषि राज्ञः प्रसूतिसमये सती ।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधीः ॥
रघुवंश प्रदीपेन तेनाप्रतिम तेजसा ।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इव भवन् ॥[2]

मानस में शंकर उमा से कहते हैं कि रामजन्म के अवसर पर काकभुशुण्डि और मैं दोनों वहाँ मनुष्य रूप में उपस्थित थे—

काकभुशुंडि संग हम दोऊ ।
मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ ॥

बाल० १९६

यह उक्ति 'सत्योपाख्यान' से सम्बद्ध है जिसमें राम-जन्म के अवसर पर शंकर और काकभुशुण्डि के अदृश्य रूप से उपस्थित होने का उल्लेख है—

भुशुंडश्च शिवश्चापि रामदर्शन लालसौ ।
अपश्यतां तदा रामं ब्रह्मवेषधरौ च तौ ॥[3]

राम की बाल-लीला

मानस के बालकाण्ड के आठ दोहों (१९२ से २०० तक) में राम की बाल-लीला का वर्णन है ।

डा० बुल्के अपनी पुस्तक 'रामकथा' पृष्ठ २५६ पर लिखते हैं—

१—डा० बुल्के ने 'रक्षागृह', का अर्थ, 'राक्षस गृह' किया है जो अशुद्ध है । वस्तुतः वस्तुतः रक्षा गृह का अर्थ है 'प्रसूति गृह' ।

२—रघुवंश सर्ग १०, श्लोक ६६, ६८

३—सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध २ अध्याय २६ श्लोक ७८

"अध्यात्म रामायण में राम की नटखटी, मक्खन की चोरी बरतनों का फोड़ना आदि वर्णित है, जो स्पष्टतया भागवत पुराण पर निर्भर है। यह वर्णन रामचरित मानस, राम रहस्य आदि में भी पाया जाता है।"

परन्तु, कौशल्या के भोजन न देने पर लाठी से भांड़ फोड़ना, छींके पर रखे हुए नवनीत को गिरा देने इत्यादि का वर्णन अध्यात्मरामायण-कार ने तो किया है पर इस प्रकार का वर्णन तुलसीदास के 'मानस' में नहीं मिलता।

राम की बाल-लीला का वर्णन पद्मपुराण[1] अध्यात्मरामायण[2] आनन्दरामायण[3] और सत्योपाख्यान[4] में भी मिलता है। तुलसी के बाल-लीला वर्णन में अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण और सत्योपाख्यान का ही प्रभाव लक्षित होता है।

राजा भोजन करते समय धूल में खेलते हुए राम को कौशल्या से पकड़वा कर मंगवाते थे। तुलसी का यह वर्णन अध्यात्मरामायण से प्रभावित है। देखिए—

मानस—बाल० २०३

भोजन करत बोल जब राजा।
नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई।
ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहिं पराई॥

अध्यात्म रामायण—१।३।४७—४६

भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत्।
आह्वयतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया॥
आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम्।
धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोगीतम्॥

राम की बाल-लीला से चमत्कृत होकर कौशल्या राम से कहती हैं कि हे प्रभो! मुझे अब आप की माया कभी न व्याप्त हो।

---

१. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ११२
२. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग ३
३. आनन्दरामायण, सारकाण्ड, सर्ग २
४. सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध, अध्याय १६—४६

बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि ।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि ॥

—बाल०, २०२

यही बात अध्यात्म रामायण में भी कौशल्या राम से कहती हैं—

आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ।

—बाल० ३ । २८

मानस में तुलसीदास ने लिखा है कि अपने सुन्दर बालकों की शोभा देख कर माताएँ तृण तोड़ती हैं जिससे दीठि न लग जाय—

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी ।
निरखहिं छबि जननी तृन तोरी ॥

—बाल०, १९८

ठीक इसी प्रकार का वर्णन 'सत्योपाख्यान' में मिलता है—

श्री रामचन्द्रस्य निरीक्ष्य शोभां तथा ।
तृणं त्रोटयति स्म माता ॥
मा दृष्टिदोषो मम बालकोऽभूदेवं ।
विचारं मनसा चकार ॥

—पूर्वार्द्ध अध्याय २७, श्लोक १५

आश्चर्य है, मानस के आधार-ग्रन्थों के अन्वेषकों में से एक का भी ध्यान आज तक इस ग्रन्थ के प्रति आकृष्ट नहीं हुआ। आगे के प्रसंगों में और 'वर्णन' शीर्षक अध्याय में इस ग्रन्थ की विशेष रूप से चर्चा की जायगी।

बाल-लीला से सम्बद्ध आनन्द रामायण और मानस के सादृश्य-सूचक एक स्थल को उद्धृत किया जाता है।

आनन्दरामायण—सारकाण्ड सर्ग २, श्लोक २२, २१

नाना शिशुक्रीडनकैश्चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ।
पितरं रञ्जयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥

मानस—

एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा ।
सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा ॥

—बाल०, २००

अपनी बात को पुनः दुहराते हुए डा० बुल्के आगे लिखते हैं—

"अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, रामचरित मानस आदि बहुत सी अर्वाचीन रामकथाओं में राम की बाल-लीला के वर्णन में भागवत पुराण की बाल-लीला का स्पष्ट अनुकरण किया गया है।"[१]

पर मानस में राम की बाल-लीला के वर्णन में भागवत पुराण का किञ्चित् भी प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। एक प्रसंग मात्र में भागवत के प्रभाव की कल्पना की जा सकती है। मानस में कौशल्या राम को स्तुति करना चाहती हैं पर कर नहीं पातीं। वह भीत थीं इसलिए कि उन्होंने जगत्पिता परमात्मा को अपना पुत्र समझ रखा था—

अस्तुति करि न जाइ भय माना।
जगत पिता मैं सुत करि जाना॥

बाल०, २०२

और, भागवत में कहा गया है कि सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्त जन जिसके महत्व का गीत गाते-गाते अघाते नहीं, उन्हीं भगवान् को यशोदा अपना पुत्र मानती थीं--

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामान्यतमजाम्॥[२]

मानस में बाल-लीला-प्रसंग के एकमात्र इसी स्थल पर भागवत के प्रभाव की कल्पना की जा सकती है। मानस के बाल-लीला-वर्णन में विशेष प्रभाव अध्यात्म रामायण का ही है। २०५ वें दोहे तक तुलसी दास अध्यात्म रामायण के बाल-काण्ड के तृतीय सर्ग की कथा का अनुसरण करते चले गए हैं।[३] हाँ! नाम-करण-प्रसंग में तुलसी ने—

१—राम कथा, पृ० ४७६

२—भागवत पुराण, १० । ८ । ४५

३—मानस-बाल०, २०४

भए कुमार जबहिं सब भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

अध्यात्म रामायण—१।३।५६-६०

अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे।
उपनीता वसिष्ठेन सर्व विद्या विशारदाः॥

× × ×

आनन्द रामायण का आधार ग्रहण किया है। आनन्द रामायण का श्लोक इस प्रकार है—

रमणाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्ष्मणस्त्विति।
भरणाद्भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुतर्जनात् ॥
—सारकाण्डसर्ग २, श्लोक २१

तुलसी ने जरा विस्तार से लिखा है—

जो आनंद सिन्धु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥

मानस—बाल०, २०५

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई।
बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी।
दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी ॥

अध्यात्म रामायण—१।३।६२-६३

रामाश्चापधरो नित्यं तूणीबाणान्वितः प्रभुः ॥
अश्वारूढ़ो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः।
हत्वा दुष्ट मृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥

× × ×

मानस—बाल०, २०५

अनुज सखा सँग भोजन करहीं।
मातु पिता अग्या अनुसरहीं ॥
....
बेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥

अध्यात्म रामायण— १।३।६५

बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।
धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ॥

× × ×

मानस—बाल०, २०५

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिश्रामा॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बशिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

—बाल०, १९७

इस प्रसङ्ग में एक बात उल्लेखनीय है कि जिस क्रम से आनन्द-रामायण में चारों बालकों के नामकरण का उल्लेख है उसी क्रम से मानस में नहीं है। 'अध्यात्म रामायण में भी पहले राम का नामकरण होता है उसके बाद भरत का तब शत्रुघ्न का और फिर लक्ष्मण का।[१] लक्ष्मण भरत से छोटे और शत्रुघ्न से बड़े हैं। वय-क्रम के इसी आग्रह से अध्यात्मरामायण में उक्त प्रकार का क्रम दिया गया है।

पर तुलसी ने जो क्रम विपर्यय किया है, वह अहेतुक नहीं है। आगे तुलसीदास कहते हैं—

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी।
बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥

बाल० १९८

वेदतत्व प्रणव 'ऊँ' है। और रामतापनी उपनिषद् में लिखा है—

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्ववर्द्धनः।
उकाराक्षर संभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥

अतः सिद्ध है कि लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और राम क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म के वाचक हैं। इस प्रकार तुलसी ने नामकरण

आयसु मागि करहिं पुर काजा।
देखि चरित हरषइ मन राजा॥

अध्यात्म रामायण, १। ३। ६४

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरविभिवाद्य च।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥

१. अध्यात्म रामायण, बाल० ३। ४०—४२

संस्कार उक्त उपनिषद् के आधार पर किया है। विश्व से प्रारम्भ न कर ब्रह्म से आरम्भ करना तो युक्तियुक्त ही है।

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा एवं अहल्योद्धार

विश्वामित्र द्वारा राम तथा लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए मांगने की कथा मानस का पहला महत्वपूर्ण प्रसंग है। राक्षस विश्वामित्र के यज्ञ में बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए विश्वामित्र दसरथ के पास जाते हैं और उनसे राम और लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षा के लिए वन में भेजने की प्रार्थना करते हैं। राजा पहले तो अस्वीकार करते हैं पर बाद में अपने राज पुरोहित वसिष्ठ की सलाह से दोनों भाइयों को भेज देते हैं।

मार्ग में राम ताड़का का वध करते हैं और विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच कर उनके यज्ञ में विघ्न करने वाले सुबाहु को अग्नि-बाण से मारते हैं और मारीच को बिना फल वाले बाण से, जिससे वह समुद्र में जा गिरता है। उसके बाद विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित जनक का धनुष-यज्ञ देखने के लिए मिथिला में जा पहुँचते हैं। मिथला के मार्ग में अहल्या का आश्रम पड़ता है जहाँ राम अहल्या का उद्धार करते हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण में यह कथा १८ वें सर्ग से लेकर ४९ वें सर्ग तक चली गई है पर यहाँ भी तुलसी वाल्मीकि से अधिक अध्यात्म रामायण से ही प्रभावित हैं।

वाल्मीकि रामायण में मुनि का प्रस्ताव सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं (मुहूर्तमिव निःसंज्ञः) । और पुत्रों को देने के लिए तैयार नहीं होते। इस पर मुनि ने ऐसा कोप किया कि पृथ्वी कांपने लगी। यह देखकर वसिष्ठ दशरथ को समझाते हैं। और दशरथ अपने दोनों पुत्रों को विश्वामित्र को सौंप देते हैं।[2] भट्टि काव्य में भी दशरथ की ऐसी ही दशा का वर्णन है—

> सशुश्रुवांस्तद् वचनं मुमोह राजा सहिष्णुः सुतविप्रयोगम्।
> अहंयुनाथ क्षितिपः शुभयुरुच्चै वचस्तापसकुञ्जरेता ॥

१—मानस, बाल० २०८-११

२—वाल्मीकि रामायण, बाल०, सर्ग १९-२०

रघुवंश में उल्लेख है कि दशरथ ने बिना किसी आपत्ति के राम-लक्ष्मण को मुनि के साथ कर दिया—

कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसु प्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥[1]

अध्यात्म रामायण के अनुसार दशरथ ने विश्वामित्र की बात सुन चिन्ताकुल होकर एकान्त में वसिष्ठ से कहा कि बड़े कष्ट से मुझे देवताओं के सदृश चार पुत्र मिले हैं। इनमें राम तो मुझे अत्यन्त प्रिय हैं जिनके बिना मैं जी न सकूँगा। इस पर वसिष्ठ ने दशरथ को समझाया और कहा कि राम मनुष्य नहीं साक्षात् परमात्मा हैं। पूर्व-जन्म में तुमने कश्यप के रूप में बड़ा तप किया था इसीलिए ये विष्णु भगवान राम-रूप में तुम्हारे पुत्र हुए हैं। विश्वामित्र राम का उनकी योगमाया सीता से सयोग कराने के लिए ही आए हैं। इसलिए तुम राम को लक्ष्मण सहित उनके साथ भेज दो। वसिष्ठ के इतना कहने पर दशरथ राम-लक्ष्मण को देने के लिए प्रस्तुत हुए।[2]

इस प्रसंग में तुलसी ने बड़ी संक्षिप्तता से काम लिया है और उन्होंने एक अर्द्धाली में सारी बात निपटा दी है :—

तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा ।
नृप संदेह नास कहँ पावा ॥
—बाल० २०८

ताड़का—बध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार ताड़का राम के बाणों से बिद्ध हो कर पृथ्वी पर गिर कर मर जाती है। रामचरित मानस में ताड़का के दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग-लोक को प्रस्थान करने का उल्लेख है।[3] इस उल्लेख का आधार अध्यात्म रामायण ही है जहाँ कहा गया है—

नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥
—अ० रा० १ । ४ । ३२

१—रघुवंश ११।२

२. अध्यात्म रामायण, बाल० ४ । १२—२०

३. मानस, बाल०, २०६

मारीच का समुद्र में उत्क्षेपण

इस प्रसङ्ग में भी तुलसी ने अध्यात्म रामायण का अनुसरण किया है। अन्तर इतना ही है कि मानस में राम मारीच को विना फल के बाण से मारते हैं।[1] जब कि अध्यात्म रामायण में इस प्रकार कोई उल्लेख नहीं है। देखिए—

अध्यात्म रामायण—बाभ० ५।६-७

रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः।
आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक ॥
तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयञ्छतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवते ॥

अहल्योद्धार

तुलसी ने अहल्या-उद्धार की वात केवल एक पंक्ति में कह दी है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।

अहल्या के दुराचार की कहानी यहाँ नहीं कही गई है। विश्वामित्र राम से 'गौतम नारि शाप वश उपल देह धरि धीर' कह कर 'चरन कमल रज चाहति' कहते हैं।

तुलसी ने पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों में उल्लिखित[2] अहल्या के दुराचार की कथा को एकदम छोड़ दिया है क्योंकि जाति, कुल, मान और सामाजिक स्वीकृति आदि से हीन होने पर भी मानस के पात्र भक्ति-भावना से पूर्ण हैं। उद्धार के बाद की गई प्रार्थना में भी अहल्या की भक्त आत्मा का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है।

अहल्या के प्रस्तर होने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। अध्यात्म रामायण में भी अहल्या शिला नहीं बनती। वह 'भूतानामदृश्या' मात्र है। विद्वानों का अनुमान है कि अहल्या के प्रस्तुत होने वाला तथ्य तुलसीदास के समय में चलने वाली किसी

१—बिनु फर बान राम तेहि मारा।
सत जोजन गा सागर पारा॥ मानस, बाल०, २१०

२—देखिए वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ४८, ४९
और
अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक १९-३४

रघुवंश में उल्लेख है कि दशरथ ने बिना किसी आपत्ति के राम-लक्ष्मण को मुनि के साथ कर दिया—

कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसु प्रणयिनां रघो कुले न व्यहन्यत कदाचिदार्थिता ॥[१]

अध्यात्म रामायण के अनुसार दशरथ ने विश्वामित्र की बात सुन चिन्ताकुल होकर एकान्त में वसिष्ठ से कहा कि बड़े कष्ट से मुझे देवताओं के सदृश चार पुत्र मिले हैं। इनमें राम तो मुझे अत्यन्त प्रिय हैं जिनके बिना मैं जी न सकूँगा। इस पर वसिष्ठ ने दशरथ को समझाया और कहा कि राम मनुष्य नहीं साक्षात् परमात्मा हैं। पूर्व-जन्म में तुमने कश्यप के रूप में बड़ा तप किया था इसीलिए ये विष्णु भगवान राम-रूप में तुम्हारे पुत्र हुए हैं। विश्वामित्र राम का उनकी योग-माया सीता से सयोग कराने के लिए ही आए हैं। इसलिए तुम राम को लक्ष्मण सहित उनके साथ भेज दो। वसिष्ठ के इतना कहने पर दशरथ राम-लक्ष्मण को देने के लिए प्रस्तुत हुए।[२]

इस प्रसंग में तुलसी ने बड़ी संक्षिप्तता से काम लिया है और उन्होंने एक अर्द्धाली में सारी बात निपटा दी है :—

तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा ।
नृप संदेह नास कहँ पावा ॥

—बाल० २०८

ताड़का—वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार ताड़का राम के बाणों से बिद्ध हो कर पृथ्वी पर गिर कर मर जाती है। रामचरित मानस में ताड़का के दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग-लोक को प्रस्थान करने का उल्लेख है।[३] इस उल्लेख का आधार अध्यात्म रामायण ही है जहाँ कहा गया है—

नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥

—अ० रा० १ । ४ । ३२

१—रघुवंश ११।२

२. अध्यात्म रामायण, बाल० ४ । १२—२०

३. मानस, बाल०, २०९

मारीच का समुद्र में उत्क्षेपण

इस प्रसङ्ग में भी तुलसी ने अध्यात्म रामायण का अनुसरण किया है। अन्तर इतना ही है कि मानस में राम मारीच को विना फल के बाण से मारते हैं।[१] जब कि अध्यात्म रामायण में इस प्रकार कोई उल्लेख नहीं है। देखिए—

अध्यात्म रामायण—बाभ० ५।६-७

रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः।
आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक ॥
तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयञ्छतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवते ॥

अहल्योद्धार

तुलसी ने अहल्या-उद्धार की बात केवल एक पंक्ति में कह दी है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।

अहल्या के दुराचार की कहानी यहाँ नहीं कही गई है। विश्वामित्र राम से 'गौतम नारि शाप वश उपल देह धरि धीर' कह कर 'चरन कमल रज चाहति' कहते हैं।

तुलसी ने पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों में उल्लिखित[२] अहल्या के दुराचार की कथा को एकदम छोड़ दिया है क्योंकि जाति, कुल, मान और सामाजिक स्वीकृति आदि से हीन होने पर भी मानस के पात्र भक्ति-भावना से पूर्ण हैं। उद्धार के बाद की गई प्रार्थना में भी अहल्या की भक्त आत्मा का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है।

अहल्या के प्रस्तर होने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। अध्यात्म रामायण में भी अहल्या शिला नहीं बनती। वह 'भूतानामदृश्या' मात्र है। विद्वानों का अनुमान है कि अहल्या के प्रस्तुत होने वाला तथ्य तुलसीदास के समय में चलने वाली किसी

१—बिनु फर बान राम तेहि मारा।
सत जोजन गा सागर पारा॥ मानस, बाल०, २१०

२—देखिए वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ४८, ४९

और

अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक १९-३४

कथानक-रूढ़ि से सम्बद्ध है।[1] किन्तु इस कथानक-रूढ़ि को इतना नवीन नहीं माना जा सकता। मानस से सहस्राधिक वर्ष पूर्व लिखे जाने वाले कालिदास के 'रघुवंश' में सर्वप्रथम पाषाणभूता अहल्या का उल्लेख मिलता है—

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल्बिषच्छिदां रामपदरजसानुग्रहः॥[2]

पद्मपुराण[3], आनन्दरामायण[4], सत्योपाख्यान[5], नृसिंह पुराण[6], स्कन्दपुराण[7], कथासारित्सागर[8], और वह्निपुराण[9] में भी पाषाणभूता अहल्या की राम-पद-रज के प्रसार से उद्धार की कथा मिलती है।

तुलसी ने अहल्या के वस्तुतः शिला हो जाने की बात रघुवंश अथवा पद्मपुराण से ली होगी।

तुलसी ने अहल्या की कथा के प्रसंग में 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' जैसा विस्तार नहीं किया है। क्योंकि 'तुलसी की पूरी कथा इस अनभिव्यक्त आधार पर निर्मित हुई है कि राम को

---

१. शाप या तन्त्र मन्त्र से पत्थर बन जाना भी एक कथानक रूढ़ि ही है। बाल्मीकि ने अहल्या का पत्थर हो जाना नहीं लिखा है।……तुलसीदास के समय में उपर्युक्त कथानक-रूढ़ि के आग्रह से यह मान लिया गया कि अहल्या स्वयं पत्थर हो गई थी।

डा० शम्भूनाथ सिंह: 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' पृ० ४८६

२. रघुवंश, ११। ३४

३. पद्मपुराण, गौड़ीयपाताल खण्ड, अध्याय १६

४. आनन्दरामायण, सारकाण्ड, ३। १६

५. सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध २। ५

६. नृसिंह पुराण, अध्याय ४७

७. स्कन्दपुराण, अध्याय १३६ और नागर खण्ड, अध्याय २०३

८. कथासरित्सागर, ३। १७

९. वह्निपुराण, अध्याय १८२

मौलिक कथा (जितनी कि मुख्य कथा के रूप में इस काव्य में समाविष्ट हुई है वह) पाठकों और श्रोताओं को ज्ञात है।'[1]

इस अन्तर को स्वीकार करते हुए भी कि 'अध्यात्म रामायण' में अहल्या के शिला बन जाने का उल्लेख नहीं है और रामचरितमानस में अहल्या वास्तव में शिला बन चुकी थी, यह स्पष्ट है कि मानस के इस प्रसंग पर भी 'अध्यात्म रामायण' का पूरा प्रभाव है।

महानाटक[2] में अगस्त्याश्रम से चले जाने के उपरान्त राम अहल्या का उद्धार करते हैं। अन्य अनेक राम-कथाओं में राम के वनवास के समय अहल्योद्धार का वर्णन किया गया है। पर अध्यात्म रामायण में राम के मिथिला जाते समय अहल्या-उद्धार की कथा दी गई है। तुलसी ने इस सम्बन्ध में अध्यात्म रामायण का ही अनुसरण किया है। मानस में अहल्या द्वारा कृत स्तुति पर अध्यात्म रामायण का स्पष्ट प्रभाव है।[3]

अध्यात्म रामायण के अनुसार अहल्योद्धार के पश्चात् राम जब गंगा पार करने लगे हैं तो निषाद ने उनका पैर धोया है। किन्तु तुलसी ने इस स्थल पर इसका वर्णन न कर इससे एक अधिक मार्मिक स्थल चुना है। उन्होंने इसका उल्लेख श्रृंगवेरपुर में रहने वाले राम के मित्र निषाद के सम्बन्ध में किया है।

पुष्पवाटिका-प्रसंग और सीता-राम का पूर्वानुराग

पुष्पवाटिका-प्रसंग को कई लोग मानस की रामचरित-माला का सुमेरु मानते हैं। लौकिक पक्ष में शिष्ट श्रृंगार का इतना उत्तम उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

वाल्मीकि-रामायण में सीता के वीर्यशुल्का होने के कारण पूर्वानुराग के लिए स्थान ही नहीं रहा। इसी दृष्टि को ध्यान में रख दुष्यन्त-शकुन्तला के पूर्वानुराग के कुशल चितेरे महाकवि कालिदास ने भी 'रघुवंश' में सीता और राम के पूर्वानुराग का कोई चित्र नहीं दिया। 'अध्यात्म रामायण' में भी इस प्रसंग की योजना नहीं है।

१—ए० पी० वारान्निकोवः 'मानस की (रूसि) भूमिका' पृ० ५३

२—महानाटक, अङ्क ३

३—देखिए— मानस, २११ दोहे के पहले का छन्द २-५

मानस में राम तथा सीता के प्रणय का सूत्रपात वाटिका-विहार-प्रकरण में होता है। राम के गुण-श्रवण पर सीता के चित्त में उनके दर्शन की लालसा उत्पन्न होती है। इस लालसा को कवि ने आकुलता द्वारा उत्कट बना दिया है। राम के हृदय में भी सीता के बजने वाले आभूषणों की ध्वनि से एक कोमल पुलक और औत्सुक्य का भाव जगता है।

यों राम-सीता के पूर्वानुराग का वर्णन 'जानकी-हरण' और हस्ति-मल्लकृत 'मैथिली-कल्याण' में भी मिलता है पर तुलसी के पुष्प-वाटिका-मिलन का आधार जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव' नाटक के द्वितीय अङ्क का विष्कम्भक है। इस विष्कम्भक में राम-लक्ष्मण का जनक की वाटिका प्रवेश करना, वाटिका में सरोवर का दर्शन करना, सीता और उनकी सखियों के नूपुर का स्वर सुनना और फिर राम-सीता का परस्पर दर्शन और सीता का राम के सौन्दर्य को देखकर अभिभूत हो जाना इत्यादि वर्णित है।

मानस के 'कंकन किंकनि नू पुर धुनि सुनि' वाली उक्ति का प्रेरक सम्भवतः 'प्रसन्नराघव' का निम्नाङ्कित गद्यांश है—

> अये क एष मदकलकरिकनकश्रृङ्खला मणि—रणितानुकारी मनोहारी कोऽपि कलकलः समुल्लसति! (विमृश्य) नूनं राजहंससिञ्जितहारि मञ्जीरगुञ्जि—तमेतत्। तदवश्यमिह सलीलचरणान् मणिनूपुरया पुरांगनया कयाचन चण्डिकायतनमागच्छन्त्याभवितव्यम्। [1]

'प्रसन्नराघव' में राम के मुख से यह बात सुनी जाती है कि गिरिजा के मन्दिर में स्त्रियाँ आई होंगी। किन्तु वहाँ गौरी-पूजन का उल्लेख नहीं है। मानस में इन प्रकार का वर्णन है कि सीता सखियों सहित सरोवर में स्नान कर गिरिजा के मन्दिर में गई और अपने अनु-रूप सुन्दर वर मांगा।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता।
गई मुदित मन गौरि निकेता॥

१—प्रसन्नराघव, अङ्क २ श्लोक ६ के पूर्व का गद्य-भाग

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥
—बाल०, २२८

श्री भद्भागवत के दशम स्कन्ध में व्रज की कुमारियों का यमुना-जल में स्नान कर कात्यायनी देवी से कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने को प्रार्थना का उल्लेख है—

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम्॥
....
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥ [1]

सम्भव है तुलसी को अपने वर्णन के लिए यहीं से प्रेरणा मिली हो! पुष्प-वाटिका प्रसंग में रूप-विधान का आतशय्य है जो प्रकृति से उतना ही लिया गया है जितना पुराणों से।

धनुर्भंग

संक्षेप में मानस के धनुर्भंग की घटना इस प्रकार है—

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण रंगभूमि में प्रवेश करते हैं। एक सुन्दर विशाल मंच पर मुनि सहित दोनों भाई प्रतिष्ठित होते हैं। इसी बीच सीता का वहाँ प्रवेश होता है। सारे उपस्थित राजा सीता के अप्रतिम सौन्दर्य से अभिभूत हो जाते हैं और सीता राम के दर्शन के लिए आकुल दिखाई पड़ती हैं।

इसके पश्चात् बंदीजन आते हैं जो सीता-स्वयम्बर सम्बन्धी जनक की प्रतिज्ञा घोषित करते हैं। कई राजा सामूहिक प्रयत्न तक में असफल होते हैं और जनक निराशपूर्ण शब्दों का उच्चारण करते हैं। लक्ष्मण विरोचित ढ़ंगसे प्रतिवाद करते हैं। इस उत्तर का प्रभाव सभा के समग्र वातावरण पर पड़ता है और विश्वामित्र राम को धनुर्भंग की आज्ञा देते हैं।

राम शंकर का धनुष तोड़ना चाहते हैं इसलिए लक्ष्मण दसों दिशाओं के दिग्गजों, शेषनाग, कच्छप और वाराह को पृथ्वी-धारण सम्बन्धी अपने-अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत करते हैं।

धनुर्भंग से घोर शब्द उत्पन्न होता है। सीता राम को जयमाल

१—श्रीमद्भागवत— १०।२२।३-४

पहनाती हैं। सीता-राम के विवाह से पृथ्वी और देव-लोक में हर्ष होता है।

कायर राजा सीता को राम से छीन लेने के लिए परस्पर मंत्रणा करते हैं। लक्ष्मण उन कायर राजाओं के शब्दों का उत्तर देना चाहते हैं इसी बीच परशुराम का प्रवेश होता है और कथानक एक दूसरा रूप ग्रहण करता है। 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार सीता स्वयम्वर में बहुत से राजा शिवधनु को चढ़ाने में असमर्थ रहे और उन्होंने मिथिला पर आक्रमण भी किया। जनक ने देवताओं की भेजी हुई सेना द्वारा उनको पराजित किया। इस घटना के बहुत काल बाद (सुदीर्घस्य तु कालस्य) धनुष-परीक्षा में सफल होकर राम ने सीता के साथ विवाह किया।[1]

बाद की राम-कथाओं में सीता-स्वयम्वर तथा राजाओं के आक्रमण इन दोनों घटनाओं को राम से ही सम्बद्ध कर दिया गया। 'जैन पउमचरिय' प्राचीनतम राम-कथा है जिसमें राम सीता-स्वयम्वर में धनुष चढ़ाते हैं।[2]

'अध्यात्म रामायण' में भी राम अन्य राजाओं की उपस्थिति में धनुष चढ़ाते हैं।[3] पर 'अध्यात्म रामायण' में धनुर्भंग की घटना और धनुर्भंग से उत्पन्न हर्ष का वर्णन केवल आठ श्लोकों में कर दिया गया है। जनक ने विश्वामित्र से कहा कि यदि राम धनुष उठा कर उसकी प्रत्यंचा पर रौंदा चढ़ा देंगे तो मैं सीता को उनसे ब्याह दूंगा। राम ने उस धनुष को बाएं हाथ से दृढ़ता से उठाकर पकड़ लिया और राजाओं के देखते-देखते उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी।[4]

'अध्यात्म रामायण' में न तो वन्दियों के द्वारा जनक के प्रण की घोषणा का उल्लेख है न जनक की निराशा का। इन प्रसंगों की योजना के लिए तुलसी 'हनुमन्नाटक' के ऋणी हैं। वर्णन-क्रम में यत्र तत्र

१—वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, अध्याय ६६ और अयोध्या काण्ड, अध्याय ११८

२—डा० बुल्के, 'रामकथा', पृ० २८६

३—अध्यात्म रामायण, १। ६। २३-२४

४—वही० १। ६। १६-२७

'प्रसन्न राघव' और 'सत्योपाख्यान' का प्रभाव भी लक्षित होता है। देखिये—

हनुमन्नाटक—अङ्क १ श्लोक १८

श्रृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते।
दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः॥
नमयति धनुरैशं मस्तदारोपणेन।
त्रिभुवन जयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा॥

मानस—बाल०, २५०

रावनु बानु महाभट मारे।
देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा।
राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

× × ×

हनुमन्नाटक—अङ्क १ श्लोक १०

आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः।
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः॥
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः।
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्॥

मानस—बाल०, २५१-५२

दीप दीप के भूपति नाना।
आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा।
बिपुल बीर आए रनधीरा॥
कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहारि बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥
कहहु काहि यह लाम न भावा।
काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

अब जनि कोउ भाखै भटमानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी॥
× × ×

हनुमन्नाटक - अङ्क १, श्लोक २१

पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां।
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः॥
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दधीषां।
रामः करोतु हरकार्मुकमाततज्यम्॥

मानस—बाल०, २६०

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
× × ×

हनुमन्नाटक—अङ्क १, श्लोक २६

त्रुट्यद्भीमधनुः कठोरनिननदस्तत्रा करोद्विस्मयम्।
त्रस्यद्वाजिखेरमार्गगमनं शम्भोः शिरः कम्पनम्॥
दिग्दन्ति स्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनम्।
वैदेहीमदनं मदान्ध दमनं त्रैलोक्यसंमोहनम्॥

मानस—बाल०, २६१ के पूर्व का छन्द

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करिहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥
× × × ×

प्रसन्न राघव—अङ्क १ श्लोक ५६

कामातुरस्य वचसामिव संविधानै
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारुमनः सतीनाम्।

मानस—बाल०, २५१

डगइ न संभु सरासनु कैसें।
कामी बचन सती मनु जैसें॥
× × × ×

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, अध्याय ३ श्लोक २

तच्छ्रुत्वा भूभुजः सर्वे व्यायामं चक्रिरे मुदा ।
कश्चित्परिकरं बद्ध्वा धनुषो निकटं ययौ ॥

मानस—बाल०, २५०

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे ।
भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई ।
....

× × ×

रामचरित मानस में तुलसी ने सीता-स्वयम्वर में रावण तथा बाणासुर की उपस्थिति का उल्लेख किया है। प्राचीनतम रचना जिसमें रावण की उपस्थिति का उल्लेख है राजशेखर कृत 'बालरामायण' है।

'अनर्घ राघव' (अङ्क ३) और हनुमन्नाटक (अङ्क १०) में सीता-स्वयम्वर में रावण के दूत के उपस्थित होने का उल्लेख है। 'पद्मपुराण' (उत्तरार्द्ध, अध्याय ११२) में सीता-स्वयम्वर में इन्द्र, रावण आदि के असफल प्रयत्न होने के बाद राम के धनुर्भंग करने का उल्लेख है। 'आनन्दरामायण' में भी रावण की उपस्थिति का वर्णन है।

'प्रसन्नराघव' (अङ्क १) में रावण तथा बाणासुर की सीता-स्वयम्वर में उपस्थिति और उनके धनुष-संधान करने के निष्फल प्रयत्न का उल्लेख है। तुलसी ने रावण तथा बाणासुर दोनों के सीता-स्वयम्वर की उपस्थिति का वर्णन 'प्रसन्नराघव' से ही लिया है।[1]

परशुराम का आगमन

तुलसी ने धनुर्भङ्ग के पश्चात् ही परशुराम के आगम का उल्लेख किया है।

वाल्मीकि रामायण में परशुराम और राम-लक्ष्मण का संवाद (बालकाण्ड सर्ग ७४—७६) विश्वामित्र के अपने आश्रम पर चले जाने पर तथा रामचन्द्र की बारात के अयोध्या लौटने के समय हुआ है। 'अध्यात्मरामायण' में भी परशुराम का आना बारात के प्रत्यावर्त्तन के समय मिथिला से तीन योजन की दूरी पर (मैथिला-

१. सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, अध्याय ३

द्योजनात्रयम्) कहा गया है। कालिदास ने भी 'रघुवंश' में बारात के लौटने के समय मार्ग में ही परशुराम के आगमन की बात कही है।[१]

डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' के आधार पर ही तुलसी ने धनुर्भङ्ग के बाद ही परशुराम की राजसभा में उपस्थिति और राम-लक्ष्मण-सम्वाद की बात कही है।[२]

पर इन दो नाटकों के अतिरिक्त तुलसीदास के पूर्ववर्त्ती तीन ऐसे अन्य नाटक भी हैं जिसमें धनुर्भङ्ग के पश्चात् ही परशुराम के मिथिला में आने का उल्लेख है। महावीर चरित (अङ्क २) अनर्घराघव (अङ्क ४) और बालरामायण (अङ्क ६) तीनों में एक ही प्रकार का उल्लेख है।

मानस के एक स्थल पर 'महावीर चरित' के प्रत्यक्ष प्रभाव की कल्पना की जा सकती है। देखिए,

महावीरचरित—अङ्क २ श्लोक २३

प्रचण्ड इव पिण्डतामुपगतश्च वीरो रसः।

मानस—

धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप।

तुलसीदास ने परशुराम के आगमन के प्रसङ्ग को पूरी नाटकीयता के साथ चरम भावात्कर्ष के रूप में इस धनुष-यज्ञ-प्रकरण से सम्बद्ध कर दिया है।

रामादिक भाइयों का विवाह और बारात का प्रत्यागमन

इस प्रसङ्ग में कथा का तत्व मुख्य नहीं है और न उस तत्व से बंधी हुई घटना-शृंखला ही वेगवती है। इस प्रसङ्ग में वर्णन और चित्रों की प्रधानता है। दृश्य-चित्र साधन है वातावरण को मूर्तिमान करने का और वातावरण साधन है, कथा में अभीष्ट प्रभाव की सिद्धि का।

तुलसी ने विवाह-वर्णन और बारात के अयोध्या-प्रत्यागमन वर्णन में वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण का अनुसरण तो किया है पर इस स्थल पर भाव, वस्तु और व्यापार-वर्णन आदि मार्मिक प्रसगों की

---

१. रघुवंश ११ । ६७

२. डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास'; पृ० ३०६

योजना अधिकांशतः उनकी मौलिक है और अंशतः 'सत्योपाख्यान' पर आधारित। इसकी चर्चा वर्णन शीर्षक अध्याय में की जायगी।

भट्टिकाव्य आदि राम-कथाओं में केवल राम-सीता विवाह का ही उल्लेख मिलता है। पर तुलसी ने वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण तथा 'सत्योपाख्यान' के आधार पर चारों भाइयों के विवाह का उल्लेख किया है।

राम, लक्ष्मण, दशरथ तथा विश्वामित्र का मिलन-प्रसंग वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में नहीं मिलता। इस प्रसंग की योजना के लिए मानसकार 'सत्योपाख्यान' का ऋणी है। इस प्रसंग का वर्णन कवि ने अनुराग से किया है। 'सत्योपाख्यान' में जो बात सात पंक्तियों में कही गई है उसे तुलसी ने लगभग दो कडवकों में कहा है—

मानस—बाल०, २०७-८

पितु आगमनु सुनत दोउ भाई।
हृदय न अति आनन्दु अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं।
पितु दरसन लालच मन माहीं॥
विस्वामित्र बिनय बड़ देखी।
उपजा उर संतोषु बिसेषी॥
हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए।
पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे।
मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसे॥
भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥
मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा।
बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई।
कहि असीस पूछी कुसलाई॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई।
देखि नृपति उर सुखु न समाई॥

सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे।
मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

सत्योपाख्यान— उत्तरार्द्ध; ६।१४-१७

एतस्मिन्नतरे विप्रो विश्वामित्रो महामुनिः।
सौमित्रिणा च रामेण ह्यागतो नृपसन्निधौ॥
आयान्तं तं मुनिं वीक्ष्य तथा तौ च कुमारकौ।
उत्थाय जगृहे पादौ विश्वामित्रस्य राजराट्॥
भ्रातरौ राजराजस्य चरणौ जगृहतर्मुदा॥
पुत्रौ संकृष्य राजा च दोर्भ्यां कृत्वा तुवक्षसि।
स्नापयामास प्रेम्णा वै नेत्राभ्याम् वारिबिन्दुभिः॥

प्रासंगिक कथा

शिव—चरित

मानस की आधिकारिक कथा के पूर्व और कई प्रसंग हैं जिनमें नारद-मोह, मनु-शतरूपा की तपस्या और प्रतापभानु के अभिशाप के प्रसंग मुख्य हैं। इन सबका सम्बन्ध रामावतार या रावणावतार के कारणों से है। केवल शिव-चरित ऐसा है जिसका कोई सम्बन्ध मुख्य र.म-कथा या रामावतार के कारणों से नहीं है। फिर भी यह चरित उन सब की अपेक्षा विस्तृत है। यह मानस के दो काण्डों—अरण्य और किष्किन्धा से बड़ा और एक तीसरे काण्ड—सुन्दर—के बराबर है। श्री वारान्निकोव ने लिखा है कि यदि तुलसी काव्य-रचना के पहले, केवल काव्य-सामग्री के तर्कपूर्ण समावेश से प्रेरित होते तो वह काव्य की जटिलता को ध्यान में रखते हुए पहले और अन्तिम (प्रत्येक) काण्ड को दो में विभक्त कर देते। अस्तु।

यह शिव-चरित अधिकांशतः 'शिवपुराण' पर आश्रित है। अत्यन्त संक्षेप में यहाँ 'शिवपुराण' की कथा उद्धृत की जाती है। उसके बाद मानस और शिवपुराण की कथा के अन्तर को निर्दिष्ट किया जायगा। शिवपुराण की कथा इस प्रकार है—

जब ब्रह्मा ने अपनी रूपवती आत्मजा संध्या के प्रति अपनी आसक्ति व्यक्त की तो शिव ने उनकी इस गर्हित आकांक्षा की प्रतिवाद किया। दक्ष इत्यादि ब्रह्मा के पुत्र उस समय वहाँ उपस्थित थे। इस अपमान का प्रतिकार करने के लिए क्षुब्ध ब्रह्मा ने प्रलय कर दिया। दक्ष ने रुद्र को मोहित करने के लिये शक्ति की उपासना की। शक्ति के प्रसाद से सती नामक कन्या उत्पन्न हुई। बाद में यही सती शिव की अर्द्धांगिनी बनीं।

ब्रह्म—सभा में दक्ष और रुद्र का विरोध हो गया। दक्ष ने आयोजित महायज्ञ में शङ्कर को भाग नहीं दिया। इसी बीच शिव और सती के बीच राम के ईश्वरत्व के सम्बन्ध से कुछ मनोमालिन्य हो गया। अतः श र ने सती का त्याग कर दिया। पिता के निमंत्रण न भेजने पर भी सती दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित हुईं और यज्ञ में शङ्कर का भाग

न देख कर उन्होंने योगाग्नि में अपने शरीर को क्षार कर दिया। वीरभद्र की उत्पत्ति द्वारा शिव ने उस यज्ञ का विध्वन्स किया। सती हियालय के यहाँ उसकी पत्नी मेना के गर्भ से उत्पन्न हुई।

पार्वती के वयस्का होने पर एक दिन नारद हिमालय के घर आए। हिमालय ने नारद से अपनी पुत्री के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया। नारद ने बताया कि कन्या का वर कोई दिगम्बर और विरक्त व्यक्ति होगा। यह सुन कर हिमालय और उनकी पत्नी मेना को बड़ा क्षोभ हुआ। नारद ने पार्वती के लिए शिव की आराधना करने का आदेश दिया। शिव स्वप्न में पार्वती के समक्ष आविर्भूत हुए और पार्वती को प्राप्त करने के संकल्प से हिमालय पर चले गए। हिमालय ने पार्वती को शिव की सेवा में नियुक्त कर दिया। एक बार हिमालय अपनी कन्या को लेकर शिव के समक्ष उपस्थित हुआ, किन्तु शिव ने उसे पुत्री सहित आने का निषेध किया। हिमालय के बहुत विनय करने पर तथा पार्वती और शिव दोनों के विवाद के फलस्वरूप पार्वती को शङ्कर की सेवा करने की स्वीकृति मिली। तारकासुर से आक्रान्त देवताओं ने ब्रह्मा की प्रेरणा से शिव और पार्वती दोनों को सम्बद्ध करने के लिए काम को शिव के पास भेजा। काम ने अपनी साधारण कला से शिव को मोहित होता हुआ न देख और पार्वती को उनके निकट आई हुइ जान उनके हृदय में अपने बाणों का प्रहार किया। थोड़ी देर के लिए शिव के हृदय में काम की वासना उत्पन्न हुई, किन्तु ध्यानावस्थित हो कर जब शङ्कर ने अपने मोह का कारण समझा तो तीसरे नेत्र की ज्वाला से उन्होंने काम को भस्मीभूत कर दिया। काम को जला कर शिव अन्तर्ध्यान हो गए। शिव के विरह में पार्वती अत्यन्त दुःखित हुई। नारद ने पार्वती को आकुल देख कर उसे 'ऊँ नमः शिवाय' का पंचाक्षर मंत्र जपने का आदेश दिया। पार्वती ने शिव की प्राप्ति के लिये माता-पिता की आज्ञा से घोर तपस्या की।

पार्वती की तपस्या से शंकित होकर देवगण ब्रह्मा के पास गए और फिर विष्णु के साथ उन्होंने पार्वती का दर्शन किया। पुनः देव-गण शिव के पास गए और पार्वती का पाणिग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। शिव ने स्वीकृति दे दी। पार्वती की प्रेम-परीक्षा के लिए शङ्कर ने सप्तर्षियों को भेजा। पार्वती ने अपने दृढ़ व्रत से अतुल स्नेह का परिचय दिया। अंत में शंकर ने जटिल ब्राह्मण का वेश धारण

कर पार्वती की परीक्षा लेनी चाही और उनके आश्रम पर जाकर उनसे विवाद किया। पार्वती का अभंग निश्चय देखकर जटिल वेशधारी शङ्कर ने अपनी निन्दा आरम्भ की। इससे पार्वती क्रुद्ध हुईं और वहाँ से चलने को उद्यत हुईं। शङ्कर अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए और पार्वती को मनः सिद्धि का वरदान दिया। पार्वती ने शंकर से प्रार्थना की आप मेरे पिता से मुझे मांगकर मेरा विधिपूर्वक पाणिग्रहण कीजिए। पार्वती को वरदान देकर शिव अन्तर्धान हो गए और पार्वती तपस्या से विरत होकर अपने घर लौट आईं।

शिव और पार्वती का परिणय सम्बन्ध स्थिर होता हुआ देख कुछ देवता इस कुचक्र में लगे कि पार्वती का विवाह शङ्कर से न हो क्योंकि उन्हें आशङ्का थी कि शिव का श्वसुर होने से हिमालय को मुक्ति मिल जायगी और इससे संसार को बड़ी क्षति पहुँचेगी। शिव पुनः जटिल रूप धारण कर मेना के समक्ष अवतीर्ण हुए और अपनी बड़ी निन्दा की। इस कारण मेना के हृदय में यह दुराग्रह उत्पन्न हो गया कि मैं अपनी कन्या को शिव से न ब्याहूंगी। शिव ने मेना को समझाने के लिए सप्तर्षियों और वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती को उनके पास भेजा। इन लोगों ने अनरण्य तथा पद्मपिप्लाद की कथा कह कर प्रकार-प्रकार से मेना को प्रबोध दिया और अन्त में मेना ने शिव से अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् स्वजनों की सम्मति से हिमालय ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण स्वीकार करने के लिए शिव को पत्र लिखा। शिव ने स्वीकार कर लिया।

विश्वकर्मा ने हिमालय के घर मण्डप आदि की रचना की। नारद ने शङ्कर के विवाह में ब्रह्मादि देवताओं को निमंत्रित किया। बारात जब हिमालय के घर पहुँची तो मेना शङ्कर का विचित्र रूप देखते ही मूर्च्छित हो गई और प्रकृतस्थ होने पर हाहाकार करना शुरू कर दिया। देवताओं ने मेना के मोह को दूर किया। शिव ने अपने दिव्य स्वरूप को प्रकट किया और मेना ने द्वार पर शिव की आरती की। शिव ने पार्वती का पाणिग्रहण किया।

यह विस्तृत कथा फुटकल रूप में मत्स्य पुराण (अध्याय १५४), वामन पुराण (अध्याय ६), स्कन्द पुराण (माहेश्वर खण्ड, अध्याय २१), पद्म पुराण (सृष्टि खण्ड, अध्याय ४०), ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ४५) और कुमार सम्भव में भी मिलती

है। तुलसी ने यत्र-तत्र, वर्णन के प्रसंग में और कथा-शृंखला को जोड़ने के लिए इनसे भी सहायता ली है। और एक स्थल पर सुभाषित रत्न भण्डागार से भी अपनी उक्ति के लिए आधार ग्रहण किया है।[1] पर समग्र रूप से यह पूरी कथा शिव पुराण में ही उपलब्ध है

१ कुमार सम्भव-सर्ग ५, श्लोक २८

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता।
परा हि काष्ठा तपस्तया पुनः॥
तदाप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां।
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥

मानस—बाल०, ७४

बेल पाती महि परई सुखाई।
तीनि सहस संवत सोई खाई॥
पनि परिहरे सुखानेउ परना।
उमहि नामु तब भयउ अपरना॥

× × ×

सुभाषित रत्न भाण्डागार—चतुर्थ माण्ड, श्लोक २६८

दिवा पश्यति नोलूको काको नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति॥

मानस—बाल०, ८५

मदन अंध ब्याकुल सब लोका।
निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥

× × ×

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—कृष्ण जन्म खण्ड, अ० ४५, श्लोक ५७

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्वत्सां पालयिष्यसि।
सहस्रदोषान्भगवानाशुतोषः क्षमियष्यति॥

मानस—बाल०, १०१

नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥

× × ×

वामन पुराण—अध्याय ६ श्लोक ६

ततो वसन्ते सम्प्राते किंशुका ज्वलन प्रभाः।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलन्॥

और तुलसी ने अविकल रूप से यह कथा वहीं से ली है। पर यह स्मरणीय है कि तुलसी ने शिवपुराण से यह कथा ली तो अवश्य है*

मानस—बाल०, ८६

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा ।
कुसुमित नव तरु राजि बिराजा ॥

× × ×

स्कन्दपुराण—माहेश्वर खण्ड, अध्याय २१, श्लोक ५२

उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपां त्यक्त्वा मनीषिभिः ।
भूतप्रेतपिशाचैश्च मदनेन विमोहितैः ॥

मानस—बाल०, ८५

देव दनुज नर किंनर ब्याला ।
प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥
इन्ह कै दसा न कहेहुँ बखानी ।
सदा काम के चेरे जानी ॥

पद्मपुराण—सृष्टिखण्ड, अध्याय ४०, श्लोक संख्या
२५०, २५१, २५४, २६३, २६४,

विलोक्य हर हुंकार ज्वाला भस्मीकृतं स्मरम् ।
विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह ॥
ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसान्विता ।
जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम् ॥
जानुभ्यामवनिं नत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम् ।
त्वमेव नाथो भुवनस्य गोप्ता दयालुरुन्मीलित भक्तिभीतिः ।

× × × ×

*हिमाचल-नारद-सम्वाद, सप्तर्षि-पार्वती-सम्वाद तथा सुर-शंकर-सम्वाद और शिव-पार्वती-विवाह-प्रसङ्ग में मानसकार ने विशुद्ध रूप से शिवपुराण का ही आधार ग्रहण किया है। इसकी चर्चा क्रमशः 'संवाद' और 'वर्णन' शीर्षक अध्याय में की जायगी। यहाँ इनसे इतर प्रसङ्गों के कुछ ऐसे सादृश्य सूचक स्थलों को उद्धृत किया जाता है जहाँ तुलसी ने शिवपुराण का पूर्णतः और लगभग शब्दशः अनुसरण किया है।

शिवपुराण—पार्वतीखण्ड, अध्याय ६ श्लोक १६

तच्छ्रुत्वा मेना शीघ्रं पतिमाहूय तत्र च ।
स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः ॥

किन्तु परिष्कार और परिवर्त्तन के साथ। मूल कथा जो शिवपुराण में प्राप्त है और मानस की कथा के अन्तर को यहाँ निर्दिष्ट किया जाता है।

(१) मानस में तुलसीदास ने सती का चरित्र वहीं से आरम्भ किया

इत्थं स्तुतः शङ्कर इन्द्रमौलिवृषाकापमन्मथकान्तया तु ॥
तुतोष दोषाकरखण्डधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ।

मानस—बाल०, ८७ के पूर्व का छन्द

जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई ।
रोदति बदति बहुभांति करुना करति संकर पहिं गई ॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही ।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥

मानस—बाल०, ७३

सुनत बचन बिसमित महतारी ।
सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥

× × ×

शिव पुराण—पार्वती खण्ड, अध्याय १६ श्लोक २६

शिववीर्यसमुत्पन्नो यदिस्यात्तनयस्सुराः ।
स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः ॥

मानस— बाल०, ८२

सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होई ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतहि रन सोइ ॥

× × ×

शिवपुराण— सती खण्ड, अध्याय २४ श्लोक ४३-४४

शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसिति चेन्मनः ।
तव रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ॥
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये ।

मानस— बाल०, ५२

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू ।
तौ किन जाइ परीक्षा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बट छाहीं ।
जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥

है जहाँ वे विरहाकुल राम को वन में घूमते हुए देखती हैं और भ्रान्त होकर शङ्कर से राम को प्रणाम करने का कारण पूछती हैं।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी।
करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥

× × ×

शिवपुराण— सती खण्ड, अध्याय २५ श्लोक संख्या ४६, ५१, ४१, ४२, ४३।

प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शम्भुस्ते नमो गतः।
एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना॥
इति रामवचः श्रुत्वा चकितासीत्सती तदा।
स्मृत्वा शिवोक्तं मत्वा चावितथं लज्जिताभृशम्॥
स्मृत्वा स्वकर्ममनसाकार्षीच्छोकं सुविस्तरम्।
प्रत्यागच्छत्युदासीना विवर्णं शिवसन्निधौ॥
अचिन्तयथि सा देवी संचलन्ती पुनः पुनः।
नाङ्गीकृतं शिवोक्तं मे रामं प्रति कुधीः कृता॥
किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शंकरं सन्निधौ।
इति सञ्चिन्त्य बहुधा पश्चात्तापोऽभवत्तदा॥

मानस—बाल०, ५३—५४

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥
मैं संकर कर कहा न माना।
निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरि अब देहउँ काहा।
उर उपजा अति दारुन दाहा॥

× × ×

शिवपुराण—सती खण्ड, अध्याय २५, श्लोक ५३-५७

चलन्तं पथि त्वं व्योमवाण्युवाच महेश्वरम्।
धन्यस्त्वं परमेशान त्वत्मोद्य यथा पणः॥

(२) तुलसी[1] ने पार्वती का सम्पूर्ण चरित्र लिया है जितना कि मूल कथा में इस प्रसंग में वर्णित है। किन्तु तुलसी ने पार्वती के चरित्र में यत्र-तत्र विस्तार और पुनुरुक्ति को कम कर कथा में संक्षिप्तता और सम्बद्धता लाने का प्रयत्न किया है।

(३) मूल[2] कथा में विष्णु आदि देवता शङ्कर से पार्वती के पाणि-ग्रहण की प्रार्थना करते हैं किन्तु मानस में शङ्कर का प्रेम और तप

न कोप्यन्यस्त्रिलोकेस्मिन महायोगी महाप्रभु।
श्रुत्वाव्योमवचो देवी शिवं प्रपच्छ विप्रभा॥
कं पणं कृतवान्नाथ ब्रूहि मे परमेश्वरः।
इति पृष्टोऽपि गिरीशः सत्या हितकरः प्रभुः॥
नोद्वाहं स्व पणं तस्यै यत् हर्यग्रकरोत्पुरा।
तदा सती शिवं ध्यात्वा स्वपतिं प्राणवल्लभं॥
सर्वं बुबोध हेतुं तं प्रियत्यागमर्षं युने।

मानस—बाल०, ५७

चलत गगन भै गिरा सुहाई।
जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना।
राम भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा।
पूछा सिवहि समेत सकोचा॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला।
सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती।
तदपि न कहेहु त्रिपुर आराती॥
सती हृदयं अनुमान किय सबु सानेउ सर्वग्य।
....

× × ×

१—शिवपुराण—द्वितीय रुद्र संहिता, तृतीत पार्वती खण्ड, अध्याय २४ श्लोक १६

तस्मात्त्वया गिरिजा देव शंभोग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरीन्द्रेण च तां कुरुष्व॥

२—राम प्रकट होकर (प्रकटे राम कृतग्य कृपाला) शिव से कहते हैं—

देख कर तथा उनके हृदय की अविचल भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं राम प्रकट होते हैं और शङ्कर से प्रार्थना करते हैं कि वे पार्वती से परिणय करें और स्वयं सप्तर्षियों को पार्वती की प्रेम-परीक्षा करने की आज्ञा देते हैं।[1]

(४) तुलसी ने स्वयं शिव का जटिल वेश में जाकर पार्वती की परीक्षा करना नही लिखा है। पार्वती के समक्ष शङ्कर के हृदय में काम का बाण मारना भी तुलसी ने नही लिखा है जैसा कि मूल कथा में है।[2]

(५) काम के क्रुद्ध होने पर संसार की जिस भयङ्कर परिस्थिति का चित्रण तुलसी ने किया है वैसा प्रभावशाली चित्रण[3] मूलकथा में नहीं है। उसके लिए तुलसी ने अन्यत्र[4] से सहायता ली है।

(६) मूलकथा में शङ्कर ने रति को उसकी प्रार्थना पर काम को अनङ्ग होने का वरदान दिया है। यद्यपि उन्होंने काम को पहले ही यह

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥
—बाल० ७६

१— तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए।
बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥
बाल० ७

पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूर करेहु संदेहु॥
बाल० ७७

२—शिवपुराण—द्वितीय रुद्र संहिता, तृतीय पार्वती खण्ड, अध्याय १९, श्लोक २१

जातायां चैव संज्ञायां रति रत्यन्तविह्विला।
विललाप तदा तत्रोच्चरन्ती विविधं वचः॥

३—दे० मानस, बाल०, ८४-८७

४—(क) कुमार सम्भव सर्ग ३, श्लोक ३६, ३९

(ख) स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड, अ० २१ श्लोक ५२

(ग) वामन पुराण, अध्याय ६, श्लोक ९

(घ) सुभाषित रत्न भाण्डागार, चतुर्थ भाण्ड श्लोक २६८

वरदान दिया था कि यदुवंशी कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में वह सहशरीर अवतीर्ण होगा किन्तु अपने विवाह के पश्चात उन्होंने उसे पुनर्जीवित कर दिया। तुलसी ने इस असंगति को बचाया है और शिव-पार्वती-विवाह के बाद काम का सशरीर होना नहीं लिखा है।

(७) शिव के द्वारा काम के जलाए जाने पर सप्तर्षि पार्वती से मिले, यह तुलसी ने वर्णित किया है।[१] परन्तु इस प्रकार का उल्लेख शिवपुराण में नहीं है।

(८) मूल कथा में हिमालय ने शिव को अपनी पुत्री देने के लिए पत्र लिखा है।[२] किंतु रामचरित-मानस में तुलसी ने शङ्कर को पत्र न दिलवा कर उनके अभिभावक ब्रह्मा के पास सप्तर्षियों के द्वारा भेजा है।[३]

(९) तुलसी ने शिव के विचित्र वेश को देखकर मेना का दुःखी होना और अपनी कन्या का शिव से विवाह न करने का हठ लिखा तो है पर मूल कथा में यह बात जितना तूल पकड़ गई है उतनी यहाँ नहीं।

(१०) शिवपुराण में शिव के विवाह में पार्वती के रूप को देखकर ब्रह्मा का काम के वशीभूत होना कहा गया है जो बहुत ही अभद्र है।[४]

---

१ अवसरु जानि सप्तरिषि आए।
तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
—बाल०, ८९

२ शिवपुराण, द्वितीय रुद्रसंहिता, तृतीय पार्वती खण्ड, अध्याय २७, श्लोक ५।

अथ प्रस्थापयामास तां शिवाय स पत्रिकाम्।

३ पत्री सप्तरिषिन्ह सोई दीन्ही।
गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती।
बाचत प्रीति न हृदयँ समाती॥
—बा० ९१

४ शिवपुराण—रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अध्याय २९ श्लोक २७।
ब्रह्मा स्वयं कहते हैं—

तुलसी ने इस प्रसङ्ग को बिलकुल उड़ा दिया है। 'मोहना' शब्द का प्रयोग तो उन्होंने किया है पर बड़ी मर्यादा के साथ।[1]

मुहुर्मुहुरहं पश्यामि स्म सतीमुखम्।
अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानास्मि सो अवशः ॥

१ देखत रूपु सकल सुर मोहे।
बरनै छबि अस जग कबि को है ॥
जगदंबिका जानि भव भामा।
सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥
—बाल०, १००

हेतु-कथाएं

तुलसी ने राम के अवतार का कारण निरूपित करते हुए कथाओं की एक माला सी समाविष्ट कर दी है। इन्हें हेतु-कथाओं की संज्ञा दी जा सकती है। ये कथाएं पाँच हैं—

(१) जय और विजय की कथा
(२) जलन्धर नामक दैत्य की कथा
(३) नारद-शाप की कथा
(४) स्वायंभुव मनु और शतरूपा की कथा
(५) प्रतापभानु की कथा

जय और विजय की कथा

हरि के द्वारपाल जय और विजय ने जो परस्पर भाई थे सनकादि के शाप से तामसी असुर देह प्राप्त की। एक का नाम हिरण्यकशिपु पड़ा और दूसरे का हिरण्याक्ष। हिरण्याक्ष को भगवान ने वाराह का शरीर धारण कर मारा और हिरण्यकशिपु को नरसिंह का। वे फिर रावण और कुम्भकर्ण के रूप में अवतीर्ण हुए। भगवान् के द्वारा मारे जाने पर भी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु इसीलिए मुक्त नहीं हो सके कि विप्र-शाप का प्रमाण तीन जन्मों के लिए था। अतः उनके कल्याण के लिए भगवान् ने फिर दशरथ और कौशल्या के रूप में अवतरित कश्यप और अदिति के पुत्र-रूप में अवतार-ग्रहण किया।

भागवत पुराण में सनकादि विष्णु के द्वारपालों जय और विजय को असुर योनि प्राप्त होने का शाप देते हैं। विष्णु इस शाप को स्वीकार करते हैं और कहते हैं—ये मेरा ध्यान करते रहेंगे और शीघ्र ही मुक्त हो कर मेरे पास लौटेंगे। इसके बाद जय-विजय के हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु के रूप में जन्म लेने का वर्णन है।[१]

१—भागवत—३।१७।१८

प्रजापतिर्नाम तयोरेकार्षीर्द यः पक्र स्वदेहाद्यमयोरजायत।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजायतं लं हिरण्याक्षमसूतमग्रतः॥

बाद में जय-विजय को दिया हुआ शाप इस तरह परिवर्तित किया गया है कि दोनों को तीन बार जन्म लेना पड़ता है। पद्मपुराण[1] में हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु तथा रावण-कुम्भकर्ण की अभिन्नता का उल्लेख मिलता है।

आनन्द-रामायण में जय-विजय के शाप को जो कथा दी गई है उसकी मानस की कथा से कोई संगति नहीं है। वस्तुतः तुलसी ने इस कथा के लिए उक्त दोनों पुराणों से ही सहायता ली है।

जलन्धर की कथा

दैत्य जलन्धर अपनी पतिव्रता स्त्री (वृन्दा) के सतीत्व के कारण युद्ध में अजेय था। प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का कार्य सिद्ध किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना तो उसने क्रुद्ध होकर भगवान् को शाप दिया।

जलन्धर उस कल्प में रावण हुआ और रामचन्द्र ने उसे युद्ध में मार कर परमपद दिया।

यह कथा स्कन्दपुराण,[2] शिवमहापुराण[3] तथा आनन्द रामायण[4] में मिलती है। दैत्य जलन्धर शिव से युद्ध करते हुए अपनी पत्नी वृन्दा के सतीत्व के कारण अजेय है। इस पर विष्णु ने जय-विजय की सहायता से वृन्दा का सतीत्व नष्ट कर दिया। वृन्दा ने जय-विजय को, जिन्होंने उसे राक्षस के रूप में डराया था राक्षस बन जाने का शाप दिया। विष्णु को जिन्होंने जलन्धर का छद्म वेश धारण किया था यह शाप दिया कि तुम मनुष्य बनोगे और ये दोनों तुम्हारी पत्नी का हरण करेंगे।

रामचरित मानस में विष्णु द्वारा वृन्दा का सतीत्व नष्ट किए जाने का उल्लेख मात्र किया गया है। कथा में इस प्रकार परिवर्त्तन किया

१ पद्म पुराण—उत्तर खंड, अध्याय २६९
२ स्कन्दपुराण—वैष्णव खण्ड, अध्याय २०-२१
३ शिव महापुराण—रुद्र संहिता,युद्ध खण्ड, अध्याय २३
४ आनन्द रामायण—१।४।२०-११२

गया है कि जलन्धर ही रावण के रूप में प्रकट होकर और राम के हाथ से मर कर परमपद पा लेता है ।[1]

नारद-शाप की कथा।

नारद-शाप की कथा दो स्थानों पर मिलती है—अद्भुत रामायण में और शिवपुराण में। अद्भुत रामायण की कथा इस प्रकार है—

नारद और पर्वत दोनों अंबरीष से उसकी कन्या श्रीमती के लिए याचना करते हैं। अंबरीष कहते हैं कि कन्या जिसका वरण करेगी वही उसका पति होगा। इस पर नारद तथा पर्वत दोनों विष्णु के पास अलग-अलग जाकर एक दूसरे को 'वानर मुख' दिलाते हैं। स्वयम्वर में श्रीमती नारद तथा पर्वत को न देखकर केवल दो बानरों को तथा दोनों बानरों के बीच सुन्दर युवक के रूप में विष्णु को देखती है। वह विष्णु के गले में जयमाल डाल देती है और उनके साथ बैकुण्ठ चली जाती है। बाद में नारद तथा पर्वत विष्णु तथा श्रीमती को राम तथा सीता के रूप में प्रकट होने का शाप देते हैं। (सर्ग ३-४)

स्पष्ट है कि अद्भुत रामायण और मानस की कथा में परस्पर कोई संगति नहीं है। वस्तुतः मानस की कथा शिवपुराण के अत्यन्त निकट है। शिवपुराण के अनुसार श्रीमती को प्राप्त करने के लिए नारद ने विष्णु के पास जाकर हरिरूप मांगा। विष्णु ने उसे हरि अर्थात् वानर का रूप दिया और स्वयं स्वयम्वर में उपस्थित होकर श्रीमती को प्राप्त किया। उस स्वयम्वर में दो शिवगणों ने नारद का उपहास किया और नारद के शाप से वे रावण और कुम्भकर्ण हो गए। नारद ने विष्णु को शाप दिया कि जिस रूप को धारण कर तुमने मेरे साथ छल किया है उसी मनुष्य रूप को तुम धारण करोगे। तुम स्त्री विरह का दुःख भोगोगे और वानर ही तुम्हारे सहायक होंगे। यह शिवपुराण

---

१ छल करि टरेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ॥
तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना।
कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ।
रन हति राम परम पद दयऊ ॥
बाल० १२३-१२४

की संक्षिप्त कथा है। कथा का विस्तार मानस के ही ढंग का है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि जहाँ शिवपुराण में अंबरीष की पुत्री श्रीमती की चर्चा है वहाँ मानस में शीलनिधि की पुत्री विश्वमोहिनी की। तुलसी ने यह कथा शिवपुराण से ही ली है यह असंदिग्ध है। अधोलिखित उद्धरणों के आलोक में इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जायगी।

शिवपुराण—रूद्रसंहिता, अध्याय २, श्लोक २—३

हिमशैलगुहाकाचिदेका परमशोभना।
यत्समीपे सुरनदी वहति वेगतः॥

मानस—बाल०, १२५

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि।
बह समीप सुरसरी सुहावनि॥

× ×

शिवपुराण—रूद्रसंहिता, अध्याय २, श्लोक २३-२४, २७, २६—३१

आचख्यौ सर्ववृत्तान्तं प्रभावं च मुने स्मरः।
विस्मितोऽभूत्सुरार्धीशः प्रशंशसाथ नारदम्॥
कामाजयं निजं मत्वा गर्वितोभून्मुनीश्वरः।
कैलाशं प्रययौ शीघं स्ववृत्तं गदि तुं मदी॥
रुद्रं नत्वाऽब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तं गर्ववान् मुनिः।
तच्छ्रुत्वा शंकरः प्राह नारदभक्तवत्सलः॥

मानस—बाल० १२७

मुनि सुसीलता आपनि करनी।
सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी।
सुनि सब कें मन अचरजु आवा॥
मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा।
तब नारद गवने सिव पाहीं।
जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए।
अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥

× × ×

शिवपुराण—रुद्र संहिता, अध्याय ३, श्लोक ५–६

मुनिर्मार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शत योजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥
स्वलोकाधिकंक रम्य नानावस्तुविराजितम् ।

मानस—बाल०, १२६

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार ।
श्री निवास पुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार ॥

× × ×

शिवपुराण—रुद्र संहिता, अध्याय ४, श्लोक ७–६

मोहिनी स्वरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा ।
असुरेभ्यो पाययस्त्वं वारुणीमृतं न हि ॥
चेत्यिबेद्य विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः ।
भवेन्नष्टाखिला माया व्यापारते हरे ॥
गतिः सा कपटा तद्गतिप्रिया विष्णोविशेषतः ।

नस—बाल०, १३६

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु ।
सुरन्ह प्रेरि विष पान करायहु ॥
असुर सुरा विष संकरहि आपु रमा मनि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कप ब्यवहारु ॥

× × ×

—रुद्र संहित, अध्याय ४, श्लोक १३, १५, १७

दानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः ।
न्वकार्षीस्सवरूपेण येन कापट्यकर्मकृत् ।
पेण मनुष्यस्त्वं भवतद्दुःखमुग्धरे ।
दुखं कृतवान्मेत्वं ते भवन्तु सहायिनः ॥
स्त्रीवियोगज दुःखं लभस्व परदुःखदः ।

, १३७

....

पावहुगे फल आपन कीन्हा ।
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा ।
सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी ।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी ।
नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥

मनु शतरूपा की कथा

राम के अवतार का दूसरा कारण परब्रह्म द्वारा दिया गया मनु और उनकी पत्नी सतरूपा के पुत्र रूप में अवतरित होने का वरदान था, जो बड़ी तपस्या के बाद उनको प्राप्त हुआ था ।

संक्षेप में इसकी कथा इस प्रकार है—

मनु ने अपने पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त कर अपनी पत्नी सतरूपा के साथ तपस्या के लिए वन-गमन किया । ये द्वादशाक्षर मंत्र का जप करते और साग-फल और कन्द का आहार ग्रहण कर सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते थे । उन्होंने सहस्रों वर्षों तक घोर तपस्या की और उनका शरीर अस्थि-कङ्काल मात्र बच रहा । ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन दिया और वर मांगने को कहा । पर वे दृढ़प्रतिज्ञ थे—उनके प्रलोभनों से अभिभूत नहीं हुए ।

तब सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य आश्रयवाले तपस्वी दम्पति को अपना परम भक्त जान आकाशवाणी की कि वर मांगो ।

दम्पति ने प्रभु के रूप को भर आँख देखने की याचना की । रूप के आगार परब्रह्म राम को उनकी आदिशक्ति सीता के साथ प्रकट होने पर मनु और सतरूपा उन्हें निर्निमेष नयनों से देखते ही रहे । भगवान् ने कहा कि मुझे अत्यन्त प्रसन्न जान यथेच्छ वर की कामना करो । मनु ने कहा कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ सतरूपा ने भी यही इच्छा व्यक्त की । भगवान ने 'तथास्तु' कहा और बोले—तुम कुछ दिनों तक स्वर्ग में निवास करो । कुछ काल बीत जाने पर तुम अवध के राजा होगे और मैं तुम्हारे यहाँ अपने अंशों सहित पुत्र-रूप में अवतार ग्रहण करूँगा और मेरी स्वरूपभूता आदि शक्ति भी अवतार ग्रहण करेंगी ।

डा० कामिल बुल्के का मत है कि स्वायंभू मनु की तपस्या का सर्व प्रथम उल्लेख पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में मिलता है ।[1] परन्तु स्वायंभू

१—डा० बुल्के— 'राम-कथा', पृ० २७३-७४

मनु की तपस्या का सम्भवतः सर्वप्रथम उल्लेख भागवत पुराण में है जो पद्मपुराण के शताब्दियों पूर्व की रचना है। पुराणों के काल-निर्णय के लिए डा० बुल्के ने आर० सी० हाजरा की रचनाओं को प्रमाण माना हैं।[१] श्री आर० सी० हाजरा के मत से पद्मपुराण का उत्तरखण्ड अपना वर्त्तमान रूप १५०० ई० के लगभग प्राप्त कर सका[२] और भागवत पुराण को स्वयं डा० बुल्के ने छठवीं अथवा सातवीं शताब्दी की रचना स्वीकार किया है।[३]

भागवत के अष्टम स्कन्ध में स्पष्टतः कहा गया है कि समस्त कामनाओं और भोगों से विरक्त हो तप के लिए मनु ने अपनी भार्या सतरूपा के साथ वन-गमन किया—

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापति प्रभुः।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥[४]

भागवत के अतिरिक्त मनु-सतरूपा की तपस्या का वर्णन विष्णु-पुराण[५] और देवी-भागवत[६] में भी मिलता है।

तुलसी ने इस प्रसंग के लिए भागवत् और विष्णु-पुराण को अपना आधार बनाया है।

भागवत—४।१।११

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महोजसौ।
इत्युत्तानपादः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥

मानस—बाल०, १४२

नृप उत्तानपाद सुत तासू।
ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ॥

× × ×

१—वही पृ० १५३
२—आर० सी० हाजरा, इण्डियन कल्चर, पृ० ७३
३—राम कथा पृ० १५४
४—भागवत ८।१।७
५—विष्णु पुराण, अध्याय ७
६—देवी भागवत १०।१

भागवत—८।१।७

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापति प्रभुः।
विसृज्यं राज्यं तपमे सभार्यो वनमाविशत् ॥

मानस—बाल०, १४२

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा।
नारि समेत गवन बन कीन्हा॥

× × ×

पद्मपुराण—उत्तरखण्ड, २६६।१

जजाप गौमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे।

मानस—बाल०, १४३

तीरथबर नैमिष बिख्याता।
....
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा।

× × ×

देवीभागवत—१०।१।१२

एकपादेन संतिष्ठन धारयामनिशं स्थिरः।

मानस—बाल०, १४५

ठाढ़े रहे एक पद दोऊ।

× × ×

पद्मपुराण—उत्तरखण्ड, २६६।२

कामना विषमा भाति निजकार्पण्यदोषतः।

मानस—बाल०, १४६

अगम लाग मोहि निज कृपनाई।

× + +

पद्मपुराण—उत्तरखण्ड, २६६।५२

प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा हर्षं गद्गदया गिरा।
पुत्रत्वं मे भवेत्याह देवदेवञ्जनार्दनम् ॥

मानस—बाल०, १४६

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत................ ॥

× × ×

पद्मपुराण—उत्तरखण्ड, २६१।५

भविष्यति नृपश्रेष्ठ यत्त मनसि कांक्षितम् ।
ममैवच महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे ॥

मानस—बाल०, १५०

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई ।
नृप तव तनय होब मैं आई ॥

× × ×

पद्मपुराण—उत्तरखण्ड, २६१।८

एवन्दत्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।

मानस—बाल०, १५२

पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना ।
अंतरधान भए भगवाना ॥

प्रतापभानु को कथा

भगवान् के अवतार के कारणों में से एक था राजा प्रतापभानु का पतन ।[1]

डा० श्री कृष्णलाल का मत है कि 'मानस में प्रतापभानु और कपटी मुनि की कथा, शबरी के प्रति किए गए नवधा भक्ति का निरूपण सम्भवतः इसी रामायण (मञ्जुल रामायण) के आधार पर है ।[2]' डा० लाल इस उल्लेख के लिए डा० बुल्के के कृतज्ञ हैं ।[3] डा० बुल्के ने 'हिन्दुत्व' (लेखक—स्वर्गीय रामदास गौड़) में उल्लिखित रामायणों की तालिका दी है । 'हिन्दुत्व' में मञ्जुल रामायण के सम्बन्ध में इसी प्रकार का उल्लेख है ।[4] स्वर्गीय गौड़ जी ने इस बात का उल्लेख नहीं किया कि उनको इन रामायणों की तालिका और तत्सम्बन्धी विवरण कहाँ से उपलब्ध हुए । इस मंजुल रामायण की किसी भी हस्तलिखित या मुद्रित प्रति का पता आज तक किसी को नहीं मिला ।

---

१. रामचरित मानस में इसी अवतार की कथा कही गई है ।
२. डा० श्रीकृष्णलाल : 'मानसदर्शन,' पृ० ६
३. डा० कामिलबुल्के : 'रामकथा' पृ० १७६
४. श्री रामदास गौड़ : 'हिन्दुत्व' पृ० १३६

तुलसीदास ने प्रतापभानु की कथा-योजना द्वारा अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है, यह तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह तथ्य तुलसी के मनोविज्ञान के अनुरूप नहीं है। फिर भी भानु-प्रताप और अरि मर्दन के रावण और कुम्भकर्ण के रूप में जन्म लेने की कथा अब तक कहीं भी प्राप्त न हो सकी।

रावण के अत्याचार से त्रस्त होकर पृथ्वी का गौ रूप धारण कर ब्रह्मा के निकट जाने और ब्रह्मा, पृथ्वी और सभी देवों का मिलकर विष्णु की स्तुति करने का प्रसंग वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में वर्णित है।[१] इस स्थल पर तुलसी ने इन दोनों ग्रन्थों का अनुसरण किया है किन्तु इन दोनों ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में भानुप्रताप और अरि मर्दन का रावण और कुम्भकर्ण के रूप में अवतीर्ण होना नहीं लिखा है। वाल्मीकि और अध्यात्म दोनों रामायणों के अनुसार[२] ब्रह्मा, पृथ्वी और देवगण क्षीर-सागर के तट पर विष्णु का स्तवन करते हैं। किन्तु तुलसी इस सम्बन्ध में शिव के मुख से कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जग मग सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना।[3]
साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

वाल्मीकि रामायण के अनुसार देवताओं को विष्णु ने वचन दिया था कि मैं कौशल्या के पुत्र-रूप में उत्पन्न होकर रावण का वध करूँगा।

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १५-१८ और अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड सर्ग २, श्लोक ५-३२

२ दे० वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड सर्ग १५ और अध्यात्म रामायण, बाल०, सर्ग २, श्लोक ७

३—मानस, बाल० १८५

अध्यात्म रामायण[1] के अनुसार विष्णु ने ब्रह्मा से पूछा कि मेरे लिए क्या करणीय है ? ब्रह्मा ने कहा कि आप मनुष्य रूप में अवतरित होकर इस देव-शत्रु का विनाश कीजिए। विष्णु ने कहा कि मैंने कश्यप और अदिति को वरदान दिया है। मैं उनके यहाँ पुत्र-रूप में अवतीर्ण होऊँगा।[2] तुलसी ने भी भगवान के मुख से कहलाया है कि मैं कश्यप-अदिति के अवतार दशरथ-कौशल्या के रूप में अवतरित होऊँगा।[3] इस स्थल पर वाल्मीकि और अध्यात्मरामायण का अनुसनण करने में तुलसी में असावधानी कर दी है। कश्यप और अदित तो उनके अनुसार उस कल्प में दशरथ और कौशल्या हुए थे जिसमें जय और विजय ब्राह्मण के शाप से रावण और कुम्भकर्ण हुए। कथा – प्रसंग में ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी रामचरित मानस में उस कल्प की कथा कह रहे हैं जब भानुप्रताप और अरिमर्दन रावण और कुम्भकर्ण हुए। संभव है, इस कल्प में भी कश्यप और अदिति दशरथ और कौशल्या हुए हों। पर तुलसी ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया।

१—अध्यात्म रामायण, बाल०, सर्ग २ श्लोक २२

२—यह कथा मत्स्यपुराण, अध्याय २४४ और वामनपुराण, अध्याय २६-२८ में भी मिलती है।

३—मानस—बाल०, १८७

संवाद

मानस में दो प्रकार के संवाद प्राप्त हैं—शृंखलाबद्ध और उन्मुक्त।* मुखबन्ध में मूलकथा और श्रोताओं के संवाद तो शृंखलाबद्ध हैं और कथा के भीतर पात्रबद्ध संवाद उन्मुक्त। शृंखलाबद्ध सम्वादों की योजना पौराणिक पद्धति पर की गई है। पुराणों में वक्ता और श्रोता की परम्पराएँ जुड़ती चली जाती हैं। ठीक इसी पद्धति पर मानस में चार वक्ता और श्रोता दिखाई पड़ते हैं। तुलसी ने मानस में श्रोता-वक्ता की परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है।

(१) सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥

(२) सोइ सिव काग भुसुण्डिहिं दीन्हा।
राम भगति अधिकारी चीन्हा॥

(३) तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला।
समदरसी जानहिं हरि लीला॥

(४) मैं पुनि निज गुरु सन सुनि कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

(बाल० ३०)

इस प्रकार मानस में निम्नलिखित चार वक्ता-श्रोता की योजना हुई है।

वक्ता	श्रोता
......	......

---

* प्रस्तुत वर्गीकरण कल्याण (मानसाङ्क) में प्रकाशित आचार्य पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र द्वारा लिखित 'मानस' के संवाद, शीर्षक निबन्ध के आधार पर किया गया है।

तुलसी	पाठक या संतजन
याज्ञवल्क्य	भरद्वाज
शिव	पार्वती
काकभुशुण्डि	गरुड़

द्यपि 'अध्यात्म रामायण' के श्रोता-वक्ता परम्परा मानस से है फिर भी मानस में कथा की परम्परा का जो उल्लेख है वह त्म रामायण' के अत्यन्त निकट है। 'अध्यात्म रामायण' को सूत जी श्रोताओं को सुनाते हैं और कहते हैं कि नारद के सम्मुख ने इस कथा का प्रकाशन किया था और इस कथा को प्रथमतः तथा राम ने हनुमान को सुनाया था और कालान्तर में पार्वती राम के ब्रह्मत्व पर शंका किए जाने पर शिव ने पार्वती के समक्ष था का प्रकाशन किया। इसी कथा को ब्रह्मा ने कलियुग के लोगों त-कामना से नारद को सुनाया। इस प्रकार 'अध्यात्म रामायण' चार श्रोता-वक्ता की योजना है—

वक्ता	श्रोता
......	......
सीता और राम	हनुमान
शिव	पार्वती
ब्रह्मा	नारद
सूत	पाठक

मानस और अध्यात्म रामायण में शृंखलाबद्ध सम्वादों की सदृश योजना से इस अनुमान के लिए यथेष्ट अवकाश है कि तुलसी को शृंखलाबद्ध सम्वाद-योजना पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव है।

अब शृंखला के पृथक-पृथक संवादों पर विचार करना अभीष्ट है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने लिखा है—"याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का प्रसंग अन्यत्र आया है। शंकर और पार्वती के संवादों से तंत्र भरे पड़े हैं, कागभुसुण्डि और गरुड़ की उद्भावना भी नवीन नहीं है, पर इन सब का सामञ्जस्य और समन्वय केवल रामचरित मानस में ही हुआ है।"[१]

१—श्री चन्द्रबली पाण्डेय एम०, ए०—'रामचरित मानस के संवाद' नागरी प्रचारणी पत्रिका, भाग १६, अंक ३, पृ० १८६

मानस के संवादों के प्रसंग में डा० बलदेव प्रसाद मिश्र लिखते हैं—"भुसुण्डि रामायण इस समय लुप्तप्राय है परन्तु उसका अस्तित्व सुना जाता है और सम्भव है गोस्वामीजी के समय वह उपलब्ध रहा हो।"[१]

डाक्टर साहब सम्भवतः यही कहना चाहते हैं कि गोस्वामी जी ने मानस में जिस कागभुसुण्डि और गरुड़ संवाद की योजना की है, उसका आधार भुसुण्डि रामायण है जो इस समय लुप्तप्राय है पर गोस्वामी जी के समय उपलब्ध था पर शिव-पार्वती संवाद को छोड़कर शेष दो संवाद कहीं भी प्राप्त नहीं है। पाण्डेय जी ने यह तो लिखा कि याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का प्रसंग अन्यत्र आया है, पर कहाँ आया है, यह उन्होंने नहीं बताया। वस्तुतः याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, संवाद अब तक किसी भी उपनिषद्, संहिताग्रन्थ, पुराण, उपपुराण, काव्य-महाकाव्य अथवा साम्प्रदायिक रामायण में नहीं प्राप्त हो सका।[२] हाँ! अद्भुत-रामायण में वाल्मीकि भरद्वाज-संवाद की योजना है।[३] यही स्थिति कागभुशुण्डि-गरुड़-संवाद की भी है। गर्ग-संहिता में काग और गरुड़ का जो प्रसंग आया है। और उसमें भुसुण्डि की काग-योनि प्राप्त होने की जो वार्त्ता है उसका मानस के सम्वाद से कोई सम्बन्ध नहीं। डा० बुल्के ने लन्दन के 'इण्डिया आफिस' में भुशुण्डि-रामायण का एक हस्तलिखित अंश देखा था जिसके आधार पर उन्होंने स्थिर किया कि भुशुण्डि रामायण में भरत-अत्रि-सम्वाद भुशुण्डि द्वारा शाण्डिल्य को सुनाया गया है।[४] भुशुण्डि रामायण की एक हस्त-लिखित प्रति आगरा के डा० भगवती प्रसादसिंह को अयोध्या में प्राप्त हुई है। वे इन दिनों काशी में ही रहकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारती महाविद्यालय (कालेज ऑव इन्डालॉजी) के प्रिंसपल डा० राजबली पाण्डेय के सहयोग से उस ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे हैं।

१—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—'मानस में रामकथा' पृ० ६३

२—गत अप्रैल मास के अन्तिम सप्ताह (ठीक तिथि स्मरण नहीं) में डा० बुल्के लेखक के घर पधारे थे। उन्होंने भी बताया कि याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद उनके देखने में कहीं नहीं आया।

३—दे० अद्भुत रामायण, १। ११

४—'राम कथा', पृ० १७१

उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक को नवम्बर, ५६ में बताया था कि भुशुण्डि रामायण राम-भक्ति को माधुर्य धारा का उपजीव्य ग्रन्थ है और इसमें कागभुशुण्डि-गरुड़-संवाद नहीं है।

अतः जितना साहित्य प्रकाश में आ चुका है। उसके आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और भुशुण्डि-गरुड़-संबाद कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

मानस के शिव-पार्वती-संवाद के सम्बन्ध में प्रो० जगन्नाथ राय एम० ए० अपना मत प्रकाशित करते हुए लिखते हैं—

"शिवपुराण में पार्वती का राम के संबंध में प्रश्न करना तो नहीं पाया जाता। हाँ! षष्ठी-संहिता के दूसरे अध्याय में पार्वती ने शङ्कर से ओंकार के स्वरूप के बारे में पूछा है। तुलसीदास ने उसी शिव-पार्वती-संवाद को ओंकार स्वरूप न कह कर राम के स्वरूप सम्बन्ध में प्रश्न कहा है।"[1]

मैं समझता हूँ इस बारे में दूर की कौड़ी मिलाने की जरूरत नहीं है। शिव और पार्वती की सम्वादात्मक राम-कथा अध्यात्म-रामायण के रूप में उपलब्ध है। 'अध्यात्म-रामायण' 'पुरारिगिरिसम्भूता' कही गई है।[2] गोस्वामीजी की राम-कथा इस ग्रन्थ को विशेष आधार मानकर चली है।

मानस और अध्यात्म-रामायण में पार्वती की राम-विषयक शङ्का और शंकर द्वारा उसके समाधान में प्रयुक्त तर्क की पद्धति मूलतः एक ही है।[3] निम्नांकित उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा कि मानस में शिव-पार्वती-संवाद का आधार असन्दिग्ध रूप से अध्यात्म-रामायण ही है।

१—प्रो० जगन्ननाथ राय एम० ए०—'रामचरित्रमानस की कथावस्तु" पृ० २०

२—पुरारिगिरिसंभूता श्रीरामार्णवसङ्गता।
अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

अ० रा०—१।१।५

३—इस सम्बन्ध में एक साम्य की ओर इंगित करना अप्रासंगिक न होगा। शंका-समाधान के रूप में कथा कहने की शैली अपभ्रंश महाकाव्य 'पउम चरिउ (स्वयम्भू) में भी मिलती है। मानस के श्रोताओं की शंका राम के ब्रह्मत्व, उनकी सर्वज्ञता, उनकी सर्वशक्तिमत्ता और उनके स्वभाव से सम्बद्ध है।

अध्यात्म रामायण—बाल०, १।१२-१५

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥
वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वविद्यया संवितमात्मसंज्ञम् ।
जानाति नात्मानमतः परेण संबोधितो वेद परमात्मतत्वम् ॥
यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद्ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ।

मानस—बाल०, १०८

प्रभु जे मुनि परमारथवादी ।
कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥

उमा ने राम की सर्वज्ञता पर शंका की, गरुड़ ने उनकी सर्वशक्तिमत्ता पर शंका की और भरद्वाज ने उनसे स्वभाव पर ही शंका की। पर 'पउम चरिउ' में श्रेणिक की शंका राम-कथा के सभी पात्रों की अलौकिकता या अस्वाभाविकता के सम्बन्ध में है। उसकी शंका थी कि यदि सारा जगत् राम के उदर में स्थित है तो रावण उनकी पत्नी का अपहरण कर कहाँ ले गया, बन्दरों ने पहाड़ों को कैसे उखाड़ फेंका, रावण के दस शीश और बीस भुजाओं का क्या रहस्य है ?

परमेसर पर-सासणेहि सुव्वह विवरेरी ।
कहे जिण सासण कैम थिय कह राहव केरी ॥

× × ×

जइ राम हो तिहुवणु उवरे माइ ।
तो रावण कहिं तिय लेवि जाइ ॥
अण्णु वि खरदूषण समरे देव ।
पहु जुज्झइ भिच्चु केंव ॥

× × ×

किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति ।
बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥
किह रावण दह मुहु वीस-हत्थु ।
अमराहिव-भुव बन्धण समत्थु ॥

(१-१-१०-११)

सेस सारदा बेद पुराना।
सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनँग आराती॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई।
की अज अगुन अलखगति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

× × ×

अध्यात्मरामायण—बाल०, सर्ग १, श्लोक ८

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम्॥

मानस—बाल०, ११०

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।
दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

× × +

अध्यात्मरामायण—बाल०, १।६,१०

ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत्।
पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव जाग्रे वद वारिजाक्ष॥

मानस—बाल०, १११

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा।
पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥

× × ×

अध्यात्म रामायण—बाल० १।३२ व ३३

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥ ३२॥

बाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्प्रकाशरूपा
व्यभिचारतः क्वचित् ।
ज्ञान तथाज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति
शुद्धचिद्घने ॥

मानस वाल०, ११६

राम सच्चिदानंद दिनेसा ।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकासरूप भगवाना ।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥

× × ×

अध्यात्म रामायण—वाल०, १।१

विच्छिन्ना मम संदेहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ।

मानस—वाल०, १२०

तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेउ ।

उपरोक्त विवेचन और उद्धरणों के प्रकाश में यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि तुलसी ने शृंखलाबद्ध संवादों के अन्तर्गत जिन तीन पृथक संवादों की योजना की है उनमें शिव-पार्वती-संवाद तो अध्यात्म रामायण पर आधारित है और शेष दो संवादों की योजना कवि की मौलिक उद्भावना का परिचायक है ।

अब कथा-प्रबन्ध के भीतर पात्र-बद्ध उन्मुक्त संवदों पर विचार किया जाता है । बाल-काण्ड की मूल आधिकारिक कथा में तीन संवाद आए हैं—

(१) विश्वामित्र-दशरथ-संवाद
(२) विश्वामित्र-जनक संवाद और
(३) परशुराम-राम-लक्ष्मण-संवाद

प्रासंगिक कथा शिव-चरित में कुल चार संवादों की योजना है।

(१) हिमाचल-नारद-संवाद
(२) हिमाचल-मेना-संवाद
(३) पार्वती—सप्तर्षि संवाद और
(४) शंकर—सुर—संवाद

इसके अतिरिक्त एक संवाद और है—जनकपुर की सखियों का संवाद। इस सम्वाद को गोष्ठी-संवाद कहा जा सकता है।

अब प्रत्येक संवाद के स्रोत की चर्चा की जाती है।

आधिकारिक कथा के संवाद

(१) विश्वामित्र-दशरथ-संवाद

यह संवाद अत्यन्त संक्षिप्त—केवल चार चौपाइयों का - है। इस संवाद पर गर्ग-संहिता, अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि-रामायण का थोड़ा प्रभाव है पर मानसकार की मौलिकता के आगे वह नगण्य है।

मानस—बाल०, २०८

मांगहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्बस देउँ आज सह रोसा॥

गर्ग-संहिता—वृन्दावनखण्ड १५।१०

गजाश्वादीनि रत्नानि वस्त्रापि च धनानि च।
मन्दिराणि विचित्राणि गृहाण त्वं यदिच्छसि॥

× × ×

मानस—बाल०, २०८

सब सुत प्रिय प्रान की नाईं।
राम देत नहिं बनै गुसाईं॥

अध्यात्म रामायण—१।४।६।१०

किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः।
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः॥

× × ×

मानस—बाल०, २०८

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा।
कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा॥

वाल्मीकि रामायण—बाल०, २०।२

ऊनषोडशवर्षो मे रामोराजीव लोचनः।
न युद्धे योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥

(२) विश्वामित्र-जनक संवाद

विश्वामित्र-जनक-संवाद में तुलसी ने पूरी मौलिकता दिखलाई है। केवल एक स्थल पर उन्होंने प्रसन्न राघव, की उक्ति का छायानुवाद कर दिया है।

मानस—बाल०, २१७

इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि ।
कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू ।
ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥

प्रसन्नराघव—अङ्क ३, श्लोक २०

एतयोः प्रकृतिरम्यरूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः ।
आन्तरः स्फुरति कोऽपि सन्निधिः प्रत्यगात्मपरमात्मनोरिव ॥

अपनी 'ब्रह्म जीव इव सहज सनेह' की उपमा के लिए तुलसी प्रसन्नराघव के ऋणी हैं।

(३) परशुराम राम-लक्ष्मण संवाद

परशुराम-राम-लक्ष्मण संवाद में तुलसी ने नाटकीय सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस नाटकीय प्रसंग के लिए उन्होंने नाटकों को ही अपना उपजीव्य बनाया। इस संवाद में 'प्रसन्न राघव' और 'हनुमन्नाटक' का स्पष्ट प्रभाव है। एक स्थल पर 'आनन्द रामायण' के और एक स्थल पर भागवत के प्रभाव की भी कल्पना की जा सकती है। देखिए—

लक्ष्मण परशुराम से कहते हैं कि आपको भृगुवंशी समझ कर और आपका यज्ञोपवीत देखकर, जो कुछ आप कहते हैं उसे मैं क्रोध रोक कर सह लेता हूँ।

भृगु सुत समुझि जनेउ बिलोकी।
जो कुछ कहहु सहउँ रिस रोकी॥
(बाल० २७३)

तुलसी की इस उक्ति का आधार 'प्रसन्न राघव' का निम्नाङ्कित श्लोक है, जहाँ लक्ष्मण कहते हैं—

भृगोश्च गोत्रापत्यत्वादुपवीत धरत्वतः ।[१]
दुरुक्तमन्तःसंदाघ तावकं सोढ़वानहम् ॥

आगे लक्ष्मण कहते हैं—

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई।
हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ॥
(बाल० २७३)

यही बात 'आनन्द रामायण' में भी लक्ष्मण इसी प्रसंग में कहते हैं—

गोविप्रदेवनारीषु राघवा नास्त्रधारिणः ।[२]

सम्भव है यह सादृश्य संयोग-लब्ध ही हो। पुनः लक्ष्मण कहते हैं—

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रलापु ॥
(बाल० २७४)

इस स्थल पर भागवत की दो उक्तियों के प्रभाव की कल्पना की जा सकती है—

पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहु भाषिणः ।[३]
....
न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ॥[४]

परिस्थिति की भीषणता देख राम परशुराम से प्रार्थना करते हैं कि लक्ष्मण को दुधमुँहा बच्चा जान इस पर कृपा कीजिए। उत्तर में परशुराम कहते हैं—यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं। इस संवाद में तुलसी ने 'प्रसन्न राघव' से पूरी सहायता ली है—

रामः—अलमिह क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया ।[५]

१—प्रसन्न राघव, ४।२५
२—आनन्द रामायण, सारकाण्ड ३।३५४
३—भागवत, १०।७७।१६
४—वही, १०।५०।२०
५—प्रसन्न राघव, ४।३६
६—वही, ४।२६

मानस—

कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥
(बाल० २७७)

प्रसन्न राघव—

जामदग्न्य—आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति विषकण्ठः
खल्वसौ ।
(अङ्क ४ श्लोक २६)

नाथ करहु बालक पर छोहू ।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
(बाल० २७७)

परशुराम को अत्यन्त क्रुद्ध जान राम उनसे कहते हैं कि मुनीश्वर अपना क्रोध छोड़िए। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आपके आगे है।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा ।
कर कुठारु आगे यह सीसा ॥
(बाल० २८१)

देखिए, 'हनुमन्नाटक' की यह उक्ति कितनी मिलती-जुलती है जहाँ राम कहते हैं—

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम् ।[1]

आगे राम परशुराम का मनुहार करते हुए कहते हैं—

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा ।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
....

देव एकु गुनु धनुष हमारे ।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
....

(बाल० २८२)

१—हनुमन्नाटक, १।३६

भृगोश्च गोत्रापत्यत्वादुपवीत धरत्वतः ।[१]
दुरुक्तमन्तःसंदाद्य तावकं सोढ़वानहम् ॥

आगे लक्ष्मण कहते हैं—

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई ।
हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ॥
(बाल० २७३)

यही बात 'आनन्द रामायण' में भी लक्ष्मण इसी प्रसंग में कहते हैं—

गोविप्रदेवनारीषु राघवा नास्त्रधारिणः ।[२]

सम्भव है यह सादृश्य संयोग-लब्ध ही हो। पुनः लक्ष्मण कहते हैं—

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रलापु ॥
(बाल० २७४)

इस स्थल पर भागवत की दो उक्तियों के प्रभाव की कल्पना की जा सकती है—

पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहु भाषिणः ।[३]
....
न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ॥[४]

परिस्थिति की भीषणता देख राम परशुराम से प्रार्थना करते हैं कि लक्ष्मण को दुधमुँहा बच्चा जान इस पर कृपा कीजिए। उत्तर में परशुराम कहते हैं—यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं। इस संवाद में तुलसी ने 'प्रसन्न राघव' से पूरी सहायता ली है—

रामः—अलमिह क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया ।[५]

१—प्रसन्न राघव, ४।२५
२—आनन्द रामायण, सारकाण्ड ३।३५४
३—भागवत, १०।७७।१६
४—वही, १०।५०।२०
५—प्रसन्न राघव, ४।३६
६—वही, ४।२६

मानस—

कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥

(बाल० २७७)

प्रसन्न राघव—

जामदग्न्य—आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति विषकण्ठः खल्वसौ ।

(अङ्क ४ श्लोक २६)

नाथ करहु बालक पर छोहू ।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥

(बाल० २७७)

परशुराम को अत्यन्त क्रुद्ध जान राम उनसे कहते हैं कि मुनीश्वर अपना क्रोध छोड़िए। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आपके आगे है।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा ।
कर कुठारु आगे यह सीसा ॥

बाल० २८१)

देखिए, 'हनुमन्नाटक' की यह उक्ति कितनी मिलती-जुलती है जहाँ राम कहते हैं—

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम् ।[1]

आगे राम परशुराम का मनुहार करते हुए कहते हैं—

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा ।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
....

देव एकु गुनु धनुष हमारे ।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
....

(बाल० २८२)

१—हनुमन्नाटक, १।३६

यह उक्ति 'हनुम नाटक' के सदृश प्रसंग का लगभग शब्दशः अनुवाद है। दोनों की पदावली में अद्भुत साम्य है—

भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते संग्रामवार्ताऽपिनो ।
सर्वेहीनबला वयं बलवतां यूयां स्थिता मूर्धनि ॥
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा ।[1]
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ॥

पुनः राम कहते हैं पुराना धनुष था छूते ही टूट गया मैं किस कारण अभिमान करूँ ?

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना ।
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥
(बाल० २८३)

इस उक्ति का आधार 'प्रसन्नराघव' है—

मया स्पृष्टं न वा स्पृष्टं कार्मुकं पुरवैरिणः ।
भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत करोमि किम् ॥[2]

तुलसी की उक्त उक्ति का आधार तो प्रसन्नराघव ही है। पर तुलसी ने 'पुराना' शब्द में एक नयी अर्थ—व्यञ्जना उत्पन्न कर दी है।

प्रासंगिक कथा के संवाद

जैसा कि लक्त ऊपर कहा जा चुका है प्रासंगिक कथा शिव-चरित में कुल चार संवाद हैं और वे सभी शिव-पुराण से लिए गए हैं। यहाँ क्रम से उन्हें उद्धृत किया जाता है।

(१) हिमाचल-नारद-संवाद

मानस—बाल०, ६७

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी ।
सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पिता हीना ।
उदासीन सब संसय छीना ॥

१—वही, १।४०
२—प्रसन्नराघव, ४।२१

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता पार्वतीखण्ड अध्याय ८ श्लोक १०-११

सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे ।
एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्वतः ॥१०॥
योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतातविवर्जितः ।
अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः ॥११॥
× × +

मानस - बाल०, ६८—६९

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥
तदपि एक मैं कहउँ उपाई ।
होइ करैं जौं दैउ सहाई ॥
जस बर मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं ।
मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं ॥
जे जे बर के दोष बखाने ।
ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने ॥
जौं बिबाहु सङ्कर सन होई ।
दोषउ गुन सम कह सब कोई ॥
... ...
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं ।
रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अध्याय ८, श्लोक १७–२०

स्नेहाच्छृणु गिरे वाक्यं मम सत्यं मृषा न हि ।
कररेखा ब्रह्मलिपिर्न भवति ध्रुवम् ॥ १७ ॥
तादृशोऽस्याः पतिः शैल भविष्यति न संशयः ।
तत्रोपायं शृणु प्रीत्या यं कृत्वा लप्स्यसे सुखम् ॥ १८ ॥
तादृशोऽस्तिवरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः ।
कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः ॥ १९ ॥
प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदोऽप्यप्रभौ हि सः ।
रविपावकगङ्गानां तत्र ज्ञेया निदर्शना ॥ २० ॥

(२) हिमाचल-मेना-संवाद

मानस—बाल०, ७१

पतिहि एकांत पाइ कह मैना ।
नाथ न मैं समुझे मुनि बैना ॥
जौं घरु बरु कुल होइ अनूपा ।
करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥
....
कंत उमा मम प्रानपिआरी ।
....

सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू ।
जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ॥

शिवपुराण—रुद्र संहिता, पार्वतीखण्ड, अ० ६, श्लोक ५, ७-८,

स्थित्वा सविनयंप्राह स्वनाथं गिरिकामिनी ।
मुनिवाक्यं न बुद्धं मे सम्यङ् नारीस्वभावतः ॥
विवाहं कुरु कन्यायास्सुन्दरेण वरेण ह ।
....
प्राण प्रिया सुता मे हि सुखिता स्याद्यथा प्रिया ॥
सद्वरं प्राप्य सुप्रीता तथा कुरु..............

× × ×

मानस—बाल०, ७२

अब जौं तुम्हहिं सुता पर नेहू ।
तौ अस जाइ सिखावनि देहू ॥

शिवपुराण—रुद्रसंति, पार्वती, खण्ड, अध्याय ६ श्लोक १०

यदिः स्नेहः सुतायास्ते सुतां शिक्षय सादरम् ।

(३) पार्वती-सप्तर्षि-संवाद

मानस—बाल०, ७८

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी ।
करहु कवन कारन तपु भारी ॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू ।
हम सन सत्य मरम किन कहहू ॥

कहत वचन मनु अति सकुचाई ।
हँसिहहु सुनि हमार जड़ताई ॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा ।
चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना ।
बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता पार्वती खण्ड, अ० २५ श्लोक२१,२४-२५,
२६, २७

ऋषय ऊचुः—शृणुशैलसुते देवि किमर्थं तप्यते तपः ।
इच्छसित्वं सुरं कं च किं फलं तद्वदा धुना ॥ २१ ॥

पार्वत्युवाच—करिष्यथ महासं मे श्रुत्वा वाचो ह्यसम्भवाः ।
संकोचो वर्णनाद्विप्रा भवत्येव करोमि किम् ॥ २४ ॥
इदं मनोहि सुदृढमवंश परकर्मकृत् ।
जलोपरिं महाभित्तिं चिकीर्षति महोन्नताम् ॥ २५ ॥
सुरर्षेशासनं प्राप्य करोमि सुदृढं तपः ॥ २६ ॥
अपक्षो मन्मनः पक्षी व्योम्नि उड्डीयते हठात् ॥ २७ ॥

× × ×

मानस—बाल०, ७९

दच्छ सुतन्ह उपदेसन्हि जाई
तिन्हि फिरि भवनु न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला ।
कनक कसिपु कर पुनि अस हाला ॥
नारद सिख जो सुनहिं नर नारी ।
अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥
तेहि के बचन मानि बिस्वासा ।
तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज्ज कुवेष कपाली ।
अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली ॥

कहहु कवन सुख अस बरु पाए।

....

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड अध्याय २५ श्लोक ३२, ३४, ३९-४२, ४४-४८

ऋषय ऊचुः—

ब्रह्म-पुत्रो हि यो दक्षस्सुषवे पितुराज्ञया।
स्वपत्न्यामयुतं पुत्रानयुंक्त तपसि प्रियान्॥ ३२॥
कूटोपदेशभाश्राव्य तत्र तान्नारदो मुनिः।
तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययुः॥ ३४॥
विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराकरोत्।
स्त्रोपदेशमयं दत्त्वा तस्मै शून्यं च तद्गृहम्॥
प्रह्लादाय स्वोपदेशान्हिरण्यकशिपोः परम्।
दत्त्वा दुःखं ददौ चायं परबुद्धिप्रभेदकः॥ ४०॥
मुनिना निज विद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना।
सा स्वगेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः॥ ४१॥
नारदा मलिनात्मा हि सर्वदोज्वलदेहवान्॥ ४२॥
लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसंमता॥ ४४॥
यदर्थमीदृशं बाले करोषि विपुलं तपः।
सदोदासी निर्विकारो मदनारिर्न संशयः॥ ४५॥
अमङ्गलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली।
कुवेषी प्रेतभूतादिसंगी नग्नो हि शूलभृत्॥ ४६॥
ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं संभविष्यति॥ ४८॥[1]

× × ×

मानस—बाल, ८०

अजहूँ मानहु कहा हमारा।
हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला।
गावहिं वेद जासु जस लीला॥

१—इस प्रसंग में दोनों का मूल कथ्य एक ही है। अन्तर इतना ही है कि पुराणकार ने व्यास में कहा है और तुलसी ने समास में।

दूषन रहित सकल गुन रासी ।
श्री पति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी ।
....

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अ० २५ श्लोक ५२-५४

ऋषय ऊचुः—अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम् ।
त्यजास्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव ॥ ५२ ॥
त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुस्सर्वसद्गुणवान्प्रभुः ।
वैकुण्ठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडाविशारदः ॥ ५३ ॥
तेन हि करिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम् ॥ ५४ ॥

× × ×

मानस—बाल०, ८०

सत्य कहेहु गिरभव तनु एहा ।
हठ न छूट छूटै बरु देहा ।
कनकउ पुनि पषान तें होई ।
जोरहुँ सहज न परिहर सोई ॥
नारद बचन न मैं परिहरउँ ।
बसउ भवन उजरउ नहिं डरउँ ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही ।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अ० २५ श्लोक ५६-५७, ५८
६० ६१,

पार्वत्युवाच—सत्यं भवद्भिः कथित स्वज्ञानेन मुनीश्वराः ।
परन्तु मे हठो नैव मुक्तो हे द्विजाः ॥ ५६ ॥
स्वतनोः शैलजातत्वात्काठिन्यं सहजं स्थितम् । ५७ ।
सुरर्षेर्वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन । ५८ ।
गृहं वसेद्वा शून्यं स्यान्मे हठस्सुखदस्सदा । ६१ ।
गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः ।
इहमुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित् ॥ ६० ॥

कहहु कवन सुख अस बरु पाए।

....

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड अध्याय २५ श्लोक ३२, ३४, ३९-४२, ४४-४८

ऋषय ऊचुः—

ब्रह्म-पुत्रो हि यो दक्षस्सुषुवे पितुराज्ञया।
स्वपत्नयामयुतं पुत्रानयुंक्त तपसि प्रियान्॥ ३२॥
कूटोपदेशमाश्राव्य तत्र तान्नारदो मुनिः।
तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययुः॥ ३४॥
विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराकरोत्।
स्त्रोपदेशमयं दत्त्वा तस्मै शून्यं च तद्गृहम्॥
प्रह्लादाय स्वोपदेशान्हिरण्यकशिपोः परम्।
दत्त्वा दुःखं ददौ चायं परबुद्धिप्रभेदकः॥ ४०॥
मुनिना निज विद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना।
सा स्वगेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः॥ ४१॥
नारदा मलिनात्मा हि सर्वदोज्वलदेहवान्॥ ४२॥
लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसंमता॥ ४४॥
यदर्थमोदृशं बाले करोषि विपुलं तपः।
सदोदासी निर्विकारो मदनारिर्न संशयः॥ ४५॥
अमङ्गलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली।
कुवेषी प्रेतभूतादिसंगी नग्नो हि शूलभृत्॥ ४६॥
ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं संभविष्यति॥ ४८॥[1]

× × ×

मानस—बाल, ८०

अजहूँ मानहु कहा हमारा।
हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला।
गावहिं बेद जासु जस लीला॥

१—इस प्रसंग में दोनों का मूल कथ्य एक ही है। अन्तर इतना ही है कि पुराणकार ने व्यास में कहा है और तुलसी ने समास में।

दूषन रहित सकल गुन रासी ।
श्री पति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी ।
....

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अ० २५ श्लोक ५२-५४

ऋषय ऊचुः—अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम् ।
त्यजास्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव ॥ ५२ ॥
त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुस्सर्वसद्गुणवान्प्रभुः ।
वैकुण्ठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडाविशारदः ॥ ५३ ॥
तेन हि करिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम् ॥ ५४ ॥

× × ×

मानस—बाल०, ८०

सत्य कहेहु गिरभव तनु एहा ।
हठ न छूट छूटै बरु देहा ।
कनकउ पुनि पषान तें होई ।
जोरहुँ सहज न परिहर सोई ॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ ।
बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही ।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अ० २५ श्लोक ५६-५७, ५८
६० ६१,

पार्वत्युवाच—सत्यं भवद्भिः कथित स्वज्ञानेन मुनीश्वराः ।
परन्तु मे हठो नैव मुक्तो हे द्विजाः ॥ ५६ ॥
स्वतनोः शैलजातत्वात्काठिन्यं सहजं स्थितम् । ५७ ।
सुरर्षेर्वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन । ५८ ।
गृहं वसेद्वा शून्यं स्यान्मे हठस्सुखदस्सदा । ६१ ।
गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः ।
इहमुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित् ॥ ६० ॥

(४) शंकर-सुर-संवाद

मानस—बाल०, ८८

बोले कृपा सिंधु वृषकेतू।
कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह विधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी।
तदपि भगति सब बिनवउँ स्वामी॥
सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिवाहु॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा।
कृपासिन्धु यह अति भल कीन्हा॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ।
नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबती तपु कीन्ह अपारा।
करहु तासु अब अंगीकारा।
सुनि विधि विनय समुझि प्रभु बानी।
ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी।

शिवपुराण—रुद्रसंहिता पार्वतीखण्ड, अध्याय २४ श्लोक १०,३६, ५५, ५६, ५३, ५४, ५८, ५६, ६६

कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः।
हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत्॥ १०॥
सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वन्तर्याम्यखिलेश्वरः।
किं न जानासि चित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात्॥ ४६॥
देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शङ्कर।
विवाहं तव संद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम्॥ ५५॥
रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर।
प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु॥ ५६॥
नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः। ५३।
वरं दातुं शिवायै वै गच्छ त्वं परमेश्वरः॥ ५४॥
भक्ताधीनः शङ्करोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा।
विहस्य प्रत्युवाचाशु वेदमर्यादरक्षकः॥ ५८॥

हे हरे हे विधे देवाःशृणुतारतोऽखिला।
तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः ॥ ५६ ॥

गोष्ठी-संवाद

जनकपुर की स्त्रियों के गोष्ठी-सम्वाद में स्त्रियों को चित्तवृत्ति की बड़ी मार्मिक और सटीक व्यञ्जना हुई है। इस संवाद पर सत्योपाख्यान, आनन्द रामायण और अनर्घराघव का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

सत्योपाख्यान

रामस्य पादरजसा पूता गौतमगेहिनी।
इदानीं ते धनुर्यज्ञं समायातो रघूत्तमः ॥[1]

मानस—बाल०, २२१

विप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि ॥

× × ×

आनन्द-रामायण

तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यो वरस्त्वयम्।[2]

मानस—बाल०, २२२

देखि राम छबि कोउ एक कहई।
जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥

× × ×

अनर्घराघव

मैथिलीमतस्मै रघुकुलकुमाराय प्रतिपद्य चिराय कृतार्थी भवामः [3]

मानस—बाल०, २२२

जौं बिधि बस अस बनै संजोगू।
तौ कृतकृत्य होई सब लोगू ॥

× × ×

---

१. सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध, ५।४०
२. आनन्दरामायण, सारकाण्ड ३।४६
३. अनर्घराघव, तृतीय अङ्क, पृ० १९६

सत्योपाख्यान

धनुषो भञ्जनञ्चैव राम एव करिष्यति।
मनोरथो मदीयस्तु पूर्णोभून्नात्र संशयः ॥[1]

मानस—

सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरे।
यह प्रतीति परिहरिअ न मोरे॥

---

१. सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध, ५/२५-२६

वर्णन

मानस के बाल-काण्ड के वर्णनों और चित्रणों का अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नाङ्कित विभाग किया जा सकता है।

(१) विवाह तथा सन्तानोदय का वर्णन।

(२) यज्ञ और तपस्या-वर्णन।

(३) मानसिक दशाओं और भावनाओं का वर्णन।

(४) रूप-चित्रण।

(५) देशकाल और वातावरण का चित्रण।

(क) नगर वर्णन—अयोध्या, जनकपुर।

(ख) देशवर्णन—हिमालय, कैलाश।

(ग) वातावरण चित्रण—काम से प्रभावित जगत, रावण का अत्याचार।

(६) स्फुट वर्णन।

तुलसी का अधिकांश वर्णन-विधान पूर्ववर्त्ती साहित्य पर आश्रित है। पर कवि की विशेषता यह है कि वह विवरण के उतने विस्तार में नहीं जाता और एक रस-सिद्ध कवि की भांति सारे प्रसङ्ग के प्रमुखतम वैशिष्ट्य (Highlight) और समवेत प्रभाव को ग्रहण करता है और उसे प्रभविष्णु और मार्मिक बनाकर कह देता है। तुलसी अनिवर्चनीय कभी नहीं कहता, वचनीय वह कभी नहीं छोड़ता और दोनों का संयोग कर अद्भुत सुरुचिपूर्ण काव्य की अभिसृष्टि कर देता है।

यहाँ तुलसी के कुछ ऐसे वर्णनों और चित्रणों की चर्चा की जाती है जिन पर पूर्ववर्त्ती साहित्य का प्रत्यक्ष प्रभाव है। जिन वर्णन-प्रसङ्गों को यहाँ उदाहृत नहीं किया गया है, समझना चाहिए वे कवि की मौलिकता के प्रमाण हैं।

विवाह-वर्णन

बाल-काण्ड में शिव-पार्वती-विवाह और सीता-राम-विवाह इन दो विवाह प्रसङ्गों का उल्लेख है। दोनों विवाह प्रसङ्गों के वर्णन में तुलसीदास की अद्भुत वर्णन-शक्ति का परिचय मिलता है। इन विवाह-प्रसङ्गों के अधिकांश मार्मिक स्थल पूर्ववर्ती साहित्य के सदृश प्रसङ्गों के छायानुवाद हैं। कुछ प्रसङ्ग उपस्थित किए जाते हैं।

शिव-पार्वती-विवाह

भोजन और गालीदान—

विवाह में भोजन के अवसर पर गाली-दान की प्रथा प्राचीन है। तुलसी ने यह प्रसङ्ग शिव-पुराण से लिया है।

मानस—बाल०, ९८ दोहे के बाद पहला छन्द।

गारी मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलम्बु बिनोद सुनि सचुपावहीं॥
जेवँत जो बढ्यो आनन्दु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यौ।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, ५३।१८-१९

तदानीं पुरनार्यश्च गालीदानं व्यधुर्मुदा।
मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान्॥
ते भुक्त्वाचम्य विधिवद्गिरिमामन्त्र्य नारद।
स्वस्थानं प्रायुयुः सर्वे मुदितास्तृप्तमागताः॥

पाणिग्रहण और वेदमन्त्रों का पाठ—

यह प्रसङ्ग भी शिवपुराण का ही छायानुवाद है।

मानस—बाल०, ११

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा।
हियँ हरसे तब सकल सुरेसा॥

वेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं ।
जय जय जय सुर संकर करहीं ॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना ।
सुमन वृष्टि नम भै विधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू ।
सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥

शिवपुराण—पार्वतीखण्ढ, रुद्रखण्ड, ४८।४१,४३-४४

वेदमंत्रेण गिरिशो गिरिजाकर पंकजम् ।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ॥
महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः ।
बभूव जयसंरावो दिवि भुव्यन्तरिक्षके ॥
साधु शब्दं नमः शब्दं चक्रुः सडतिहर्षिताः ।

दहेज

दहेज का प्रसंग भी लगता है मानसकार ने 'शिवपुराण' से लिया है ।

मानस—बाल०, १०१

दासी दास तुरग रथ नागा ।
धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना ।
दाइज दीन्ह न जाई बखाना ॥

दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यौ ।
....

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड, ४८।४६-५२

हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वती शिवप्रीतये ।
नानाविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ॥
कौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च ।
गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा ॥
दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रव्य भूषितम् ।
नगानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ॥
सुवर्णजटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ।

सीता राम विवाह

परशुराम-संवाद के घटना-प्रधान 'क्लाइमेक्स' के बाद यह तुलसी की ही कलम थी जो राम-विवाह का विस्तृत वर्णन करते हुए भी रोचकता बनाए रख सकी। विपर्यय के रूप में शिव-विवाह का चित्र पहले से ही उपस्थित कर दिया गया था। शिव-विवाह की तरह ही सीता-राम-विवाह में भारतीय विवाह-पद्धति के सभी प्रसंगों की योजना है। शिव-विवाह वाले प्रसंग अधिकांशतः शिव-पुराण से प्रभावित हैं किन्तु सीता-राम-विवाह के प्रसंगों के लिए कवि विशेषतः 'सत्योपाख्यान' और अंशतः अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण और बाल्मीकि रामायण का ऋणी है।

जनक की अगवानी और दशरथ का सिद्धियों द्वारा स्वागत

मानस—बाल०, ३०४

आवत जानि बरात पुर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध १०।७

श्रुत्वा तु जनको राजा प्रजाभिर्ब्राह्मणैः सह।
निर्जगाम नृपं नेतुं स्वपुरं प्रति मैथिलः॥
अश्ववारैर्मतङ्गैश्च शिविकाभिश्च नागराः।

तुलसी ने 'सुनि गहगहे निसान' से एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। 'सत्योपाख्यान' में इसका उल्लेख नहीं है।

× × ×

मानस—बाल०, ३०६

सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध १०।१२

सर्वास्तु सिद्धयस्तत्र चाज्ञया जनकस्य तु।
सेवन्ते सैनिकाँस्तत्र नाना संभारभूतिभिः॥

शची शारदा आदि की विवाह के अवसर पर उपस्थिति

मानस—बाल०, ३१८

सची सारदा रमा भवानी ।
जे सुरतिय सुचि सहज सयानी ॥
कपट नारि बर बेष बनाई ।
मिलीं सकल रनिवासहिं जाई ॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, १२।२-३

ब्रह्माणी तत्र रुद्राणी इन्द्राणी शारदा तथा ।
अन्या वै लोकपालानां स्त्रियस्तत्र समागताः ॥
गन्धर्व्योऽप्सरस्तत्र तथा नार्योह्यनेकशः ।
दर्शनार्थं तु देवस्य रामचन्द्रस्य धीमतः ॥

शची, शारदा आदि के छद्मवेष में उपस्थित होने की उद्भावना तुलसी की मौलिक है। इस उद्भावना द्वारा एक नया चमत्कार उत्पन्न हो गया है। सत्योपाख्यानकार की कल्पना में यह चीज नहीं आई थी। तुलसी ने अपनी स्वाभाविक निरीक्षण शक्ति से यह समझा कि यदि ये देवियाँ छद्मवेष में नहीं जातीं तो नेत्र-लाभ नहीं कर सकेंगी।

मण्डप का सौन्दर्य और दशरथ द्वारा वसिष्ठ और विश्वामित्र की पूजा

वैसे राम-विवाह के अधिकांश प्रसंग 'सत्योपाख्यान' से ही लिए गए हैं किन्तु प्रस्तुत विषय का अपेक्षाकृत मार्मिक वर्णन अध्यात्म रामायण में उपलब्ध है। मानसकार ने इसीलिए इस प्रसंग के लिए 'अध्यात्म रामायण' को अपना आधार बनाया है।

मानस—बाल०, ३२० के पूर्व का छन्द

मण्डपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरतौं मुनि मन हरे ।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे ॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिष लही ।
कौसिक हि पूजत परम प्रीति की रीति तौ न परै कही ॥

अध्यात्म रामायण—बाल० ६।४६, ४८-४६

रत्नस्तम्भ सुविस्तारे सुविताने सुतोरणे ।
मण्डपे सर्वशोभाढ्ये स्वर्णपीठे न्यवेशयत् ॥

वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्द पुरोहितः ।
यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥

इस प्रसंग का-वर्णन-विधान तो तुलसी ने 'अध्यात्म रामायण' से लिया है किन्तु मण्डप के मनोरम सौंदर्य और ऐसे अवसर पर होने वाले लोगों के सहज व्यवहार की सहज अनुभूति कवि ने बिलकुल प्रत्यक्ष रूप में स्वतंत्र ढंग से की है। इसके फलस्वरूप वर्णन में गति, जीवन और मौलिक सौंदर्य दिखाई पड़ता है।

भोजन और गालीदान

भोजन के अवसर पर गाली-दान का प्रसंग शिव-विवाह में जिस प्रकार शिवपुराण से लिया गया है, राम-विवाह में उसी प्रकार सत्योपाख्यान से ।

मानस—बाल०, ३२६

छ रस रुचित बिंजन बहु जाती ।
एक एक रस अगनित भाँती ॥
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी ।
लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥
समय सुहावनि गारि बिराजा ।
हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, १७।११

तदन्नं परमं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
तदानीं पुरनार्यश्च गालीदानं व्यधुर्मुदा ॥

सन्तानोदय

राम-जन्म

राम-जन्म का वर्णन तुलसी ने बड़े विस्तार और अनराग से किया है। इस प्रसङ्ग में एक स्थल पर उन्होंने भागवत के कृष्ण-जन्मोत्सव प्रसङ्ग के कुछ श्लोकों को शब्दशः अनूदित कर दिया है।

मानस—बाल०, १६१

सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ ॥

बन कुसुमित गिरि गन मनिआरा ।
स्रवहिं सकल सरिता अमृत धारा ॥
... ...

गगन विमल संकुल सुर जूथा ।
गावहिं गुन गन्धर्व बरूथा ॥

बरषहिं सुमन सुअञ्जलि साजी ।
गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ॥

भागवत—१०।३।३–६

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसंनदास्तबका वनराजयः ॥

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनाम सुरद्रुहाम् ॥

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥

तुलसी के पूरे उद्धरण में 'गिरि गन मनिआरा' पद ही ऐसा है जो मौलिक है अन्यथा सारा प्रसंग भागवत का शब्दशः अनुवाद है। देखिए,—

सीतल मंद सुरभि वह बाऊ = ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगंधवहः शुचिः
हरषित सुर संतन मन चाऊ = मनास्यासन्प्रसन्नानि साधुनामसुरद्रुहाम्
बन कुसुमित = स्तबका वनराजयः
स्रवहिं सकल सरिता अमृतधारा = नद्यः प्रसन्नसलिलाः

गगन विमल संकुल सुर जूथा } = जगुः किन्नरगन्धर्वास्तु-
गावहिं मन गन्धर्व बरूथा } = ष्टुवुः विद्धचारणाः
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी = मुमुचुर्मुनयो देवाः
सुमनांसि मुदान्विताः
गहगहि गगन दुंदुभी बाजी = नेदुर्दुंदुभयो दिवि ।

यज्ञ और तपस्या-वर्णन

दक्ष-यज्ञ

दक्ष-यज्ञ से सम्बद्ध सभी प्रसंगों की बड़ी सुन्दर योजना बालकाण्ड में हुई है। इन प्रसंगों पर भागवत और शिव पुराण का प्रभाव है। मूल प्रसंगों का उतना ही प्रभाक वर्णन मानस में भी सुरक्षित है।

यज्ञ वर्णन

मानस—बाल०, ६०

दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥

भागवत—४।३ ३-४

इष्ट्वा स ब्रह्मिष्ठानभिभूय च।
वृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम्॥
तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृ देवता।
आसन्…………………

× × ×

मानस—बाल०, ६१

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्बा।
बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
…………………………
सतीं बिलोके ब्योम बिमाना।
जात चले सुन्दर बिधि नाना॥

भागवत—४।३ ५-६

तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम्।
सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम्॥
व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः।
विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः॥

सती का तिरस्कार और सती का तज्जन्य क्षोभ

मानस—बाल०, ६१

पिता भवन जब गई भवानी।
दच्छ त्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहिं मिली एक माता।
भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता।
सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा।
कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेउ।
प्रभु अपमानु समुझि उर दहेउ ॥

शिवपुराण रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड २९।१,४,५,७

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः।
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी ॥
अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम्।
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन।
नान्योपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहितः।
भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे ॥
न शंभु भागमकरोत्क्रोधं दुर्विषहं सती।

सती का देह-त्याग

मानस—बाल०, ६४

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धर चन्द्रमौलि वृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३०।८६

हतकल्मष तद्देहः प्रापतच्च तदग्निना।
भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ त्वदिच्छया ॥

तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा ।
हाहेति सोद्धुतताश्चित्रस्सुरादीनां भयावहः ॥

शंकर का क्रोध और यज्ञ-विध्वंस

मानस—बाल०, ६५

समाचार सब शंकर पाए ।
वीरभद्रु करि कोप पठाए ॥
जग्य बिधंस जाइ तब कीन्हा ।
सकल सुरन्ह विधिवत फल दीन्हा ॥

शिवपुराण—रुद्र संहिता, सतीखण्ड १।३५-३६

रुद्रे रुष्टे कथं लोके सुखं भवति सुप्रभौ ।
रुद्रस्यानुचरैस्तत्र वीरभद्रादिभिः कृतः ॥
यज्ञध्वंसोऽभवत्रेत्थं देवलोके हि पश्यति ।

पुत्रेष्टि-यज्ञ—

बाल-काण्ड में एक कडवक में दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ का वर्णन है। यह वर्णन ज्यों का त्यों 'अध्यात्मरामायण' से ले लिया गया है।

मानस—बाल०, १८६

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा ।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे ।
प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें ॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ विचारा ।
सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
यह हवि बांटि देहु नृप जाई ।
जथा जोग जेहि भाग वनाई ॥
तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाई ।
परमानन्द मगन नृप हरष न हृदयँ समाई ॥

अध्यात्म रामायण—बाल० ३।५-१०

शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यश्रृंगं तपोधनम् ।
अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर ॥

तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः ।
यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥

श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्त जाम्बूनदप्रभः ।
पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥

गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् ।
लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥

इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः ।
ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥

पार्वती की तपश्चर्या

पार्वती की तपश्चर्या का बड़ा व्यापक वर्णन कालिदास के 'कुमार-सम्भव' के पाचवें सर्ग में मिलता है। मानस के संक्षिप्त वर्णन का भी आधार कुमारसम्भव ही है—

मानस—बाल०, ७४

बेल पात महि परइ सुखाई ।
तीन सहस संवत सोई खाई ॥

पुनि परिहरे सुखानेउ परना ।
उमहि नाम तव भयउ अपरना ॥

मानस—बाल०,२२५

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।

तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥

मानसिक दशाओं और भावनाओं का वर्णन

बाल-काण्ड में मानसिक दशाओं के अत्यन्त सूक्ष्म और ललित वर्णन-प्रसंग आए हैं। इनमें से अधिकांश प्रसङ्ग तुलसी की मौलिक उद्भावना है पर कतिपय स्थलों पर उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती कवियों की मार्मिक उक्तियों का अनुवाद भी कर दिया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

(१) राम के रूप का प्रभाव जनकपुर के नारी-समाज पर पहले ही पड़ता है। पूरी राज-सभा में वे ही एक मात्र पुरुष हैं जो सीता के लिए योग्य वर हैं। सभी विवाहेच्छु अयोग्य राजाओं के श्लथ हो जाने पर राम जब धनुष तोड़ने के लिए प्रस्तुत होते हैं तब राम की अनुरूपता और सीता की कल्याण-भावना के परस्पर संयोग से पुर-नारियों के चित्त में सहज ही राम के प्रति अपार सहानुभूति और शुभकामना का भावोदय होता है। इस भाव-दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मानस में उपलब्ध है जो 'आनन्द-रामायण' से प्रभावित है।

मानस—बाल०, २५५

चलत राम सब पुर नर नारी।
पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बन्दि पितर सुर सुकृत सँभारे।
जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौं सिव धनु मृनाल की नाईं।
तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥

आनन्द-रामायण—सारकण्ड,सर्ग ३,श्लोक १०५,६,८

एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभाङ्गणविराजितम्।
न्यस्त कोदण्ड तूणीरं शिवचापिभिसम्मुखम्॥
प्रार्थयामासुस्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्या ऊर्ध्वसत्कराः।
हे शम्भो ! हे रमाकान्त ! हे विधेऽस्मत्पुराकृतैः॥
व्रतदानादि पुण्यैश्च चापं सज्जीकरोत्वयम्।

(२) सीता के चित्त पर इसी भाव-दशा का जो प्रभाव पड़ता है वह भी अत्यन्त मार्मिक और दाम्पत्य-रति की प्रथमावस्था का सफल अङ्कन है। इस चित्र के लिए भी मानसकार आनन्द रामायण का ऋणी है।

मानस—बाल०, २५७

तब रामहि बिलोकि बैदेही।
सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी।
होहु प्रसन्न महेश भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई।
करि हितु हरहु चाप गरुआई॥
गन नायक बर दायक देवा।
आजु लगे कीन्हिउँ तुम सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरि।
करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

आनन्द रामायण—सारकाण्ड, सर्ग ३ श्लोक, १११, ११३, ११६, ११८, ११९

एतस्मिन्नन्तरे सीता रामं दृष्ट्वा सभाङ्गणे।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमण्डिता॥
हे शम्भो! हे विधे! दुर्गे! हे सावित्रि! सरस्वति!!
युष्माकं प्रार्थयाम्यद्य प्रसार्य निजपल्लवम्।
सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत्॥

(३) सीता के मन में राम की सुकुमारता के फल-स्वरूप नाटक की अवमर्श सन्धि की तरह फलागम के पूर्व वाली आशङ्का उठती है। प्रियजन के हित के विषय में अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम के कारण उठनेवाली आशंका मानव-चित्त का अत्यन्त स्वाभाविक धर्म है। सीता के हृदय में इस दशा का पूर्णतम अन्विति दिखाई गई है। इस मार्मिक प्रसंग के लिए कवि ने 'हनुमन्नाटक' का आधार ग्रहण किया है।

मानस—बाल०, २५८

अहह तात दारुनि हठ ठानी।
समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥

सचिव समय सिख देई न कोई।
बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कलिसहु चाहि कठोरा।
कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥

हनुमन्नाटक—अङ्क १, श्लोक ६

कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौरघुनन्दनः।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः॥

यहाँ तुलसी ने 'विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः' का बिलकुल सटीक अनुवाद 'अहह तत दारुनि हठ ठानी' के रूप में किया है।

(४) जयमाल पहनाती हुई सीता का संकोच-प्रसंग 'सुभाषित रत्न-भाण्डागार' की उक्ति का अनुवाद है।

मानस—बाल०, २६५

सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता।
करति न चरन परस अति भीता॥
गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसत पद पानि।
....

सुभाषितरत्न भाण्डागार—द्वितीय भाण्ड, श्लोक ५६।

शिक्षितापि सखिभिर्ननु सीता रामचन्द्रचरणौ न ननाम।
किं भविष्यति मुनीश वधूवद् भालरत्नभिहतद्रजसेति॥

(५) बन्धुओं सहित अपने पुत्रों को देखकर दशरथ कितने प्रसन्न हैं!

मानस—बाल०, ३२५

मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥

इस प्रसंग पर रघुवंश की पूरी छाप है।

रघुवंस—१०।८४

स चतुर्धा वभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवी पते।
धर्मार्थ काममोक्षाणामवतार इवांगभाक् ॥

रूप-चित्रण

राम के रूप-वर्णन का एक प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जाता है जो 'सत्योपाख्यान' से लिया गया है।

मानस—बाल०, २४३

पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई।
कुसुमकली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ।
....

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, ५।२४-२५

दधतौ मस्तके दिव्यां काञ्चनीं पट्टिकां शुभाम्।
स्तवकं मणि मुक्तानां पुष्पाणां च तथा विधाम्॥
त्रिरेखया शोभमानं कम्बुकण्ठं मनोहरम्।

(३) विवाह-मण्डप में वर और वधू के सौंदर्य की उपमा काम और रति से दी गई है। उनकी छाया की प्रतिबिम्बीकृत शोभा के वर्णन-प्रसंग के लिए मानसकार 'सत्योपाख्यान' के सदृश प्रसंग का ऋणी है।

मानस—बाल०, ३२५

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा।
देखत राम विवाह पुनीता॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, ११।१८

शुशुभे च तदा रामः कामोरत्येव मण्डपे।
यत्र स्वर्णमयी स्तम्भाः सौधे सौधे निरूपिताः॥
तेषु तत्प्रतिबिम्बेन सजीवा इव वै गृहाः॥

(४) बाल-काण्ड में सीता के सौन्दर्य-वर्णन से सम्बन्धित केवल एक अर्द्धाली ही ऐसी प्राप्त हो सकी है जिस पर पूर्ववर्ती कवि का प्रभाव लक्षित होता है।

मानस—बाल०, २३०

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई।
बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥

तुलसी का यह वर्णन कालिदास कृत कुमार सम्भव के पार्वती के शोभा-वर्णन का अनुवाद जान पड़ता है।

कुमार सम्भव—१।४९

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्य दिदृक्षयेव॥

रूप-चित्रण

राम के रूप-वर्णन का एक प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जाता है जो 'सत्योपाख्यान' से लिया गया है।

मानस—बाल०, २४३

पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई।
कुसुमकली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ।
....

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, ५।२४-२५

दधतौ मस्तके दिव्यां काञ्चनीं पट्टिकां शुभाम्।
स्तवकं मणि मुक्तानां पुष्पाणां च तथा विधाम्॥
त्रिरेखया शोभमानं कम्बुकण्ठं मनोहरम्।

(३) विवाह-मण्डप में वर और वधू के सौंदर्य की उपमा काम और रति से दी गई है। उनकी छाया की प्रतिबिम्बीकृत शोभा के वर्णन-प्रसंग के लिए मानसकार 'सत्योपाख्यान' के सदृश प्रसंग का ऋणी है।

मानस—बाल०, ३२५

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा।
देखत राम विवाह पुनीता॥

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध, ११।१८

शुशुभे च तदा रामः कामोरत्येव मण्डपे।
यत्र स्वर्णमयी स्तम्भाः सौधे सौधे निरूपिताः॥
तेषु तत्प्रतिबिम्बेन सजीवा इव वै गृहाः॥

(४) बाल-काण्ड में सीता के सौन्दर्य-वर्णन से सम्बन्धित केवल एक अर्द्धाली ही ऐसी प्राप्त हो सकी है जिस पर पूर्ववर्ती कवि का प्रभाव लक्षित होता है।

मानस—बाल०, २३०

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई।
बिरचि बिश्व कहँ प्रगटि देखाई॥

तुलसी का यह वर्णन कालिदास कृत कुमार सम्भव के पार्वती के शोभा-वर्णन का अनुवाद जान पड़ता है।

कुमार सम्भव—१।४९

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्य दिदृक्षयेव॥

देश-वर्णन

हिमालय

पार्वती के जन्म के प्रसंग में तुलसी ने हिमालय का वर्णन किया है। पार्वती की जन्म की महिमा से सारी प्रकृति प्रसन्न हो उठी थी और पशु अपना सहज वैर भूल गए थे। तुलसी का यह वर्णन 'शिव-पुराण' और 'भागवत' पर आधारित है। देखिए,

मानस—बाल०, ६५

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर मनि आकर बहु भाँति ॥

शिवपुराण——रुद्र संहिता, पार्वतीखण्ड,२२।६८

वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च ।
पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन मुनिसत्तम ॥

× × ×

मानस—बाल०, ६६

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं ।
खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥

भागवत—१०।३।२

नद्यः प्रसन्न सलिला ह्रदा जलरुह श्रियः ।
द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥

× × ×

मानस—बाल०, ६६

सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा ।
गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥

शिवपुराण—रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड, २२।६८

सिंहा गावश्च सततं रागाददोष संयुताः ।
तन्महिन्नाच ते तत्र ना बाधन्त परस्परम् ॥

कैलाश का वर्णन

कैलाश-वर्णन-प्रसंग का एक दोहा उद्धृत किया जाता है। यह भागवत पुराण के एक श्लोक का छायानुवाद जान पड़ता है।

मानसः—बाल०, १०५

सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर सुर वृन्द ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुख कन्द ॥

भागवत—४।६।६

जन्मौषधि तपोमंत्र योगसिद्धैर्नरतरैः ।
जुष्टः किन्नर गंधर्वैरप्सरोभिवृतः सदा ॥

वातावरण-चित्रण

(१) काम से प्रभावित जगत्

बाल-काण्ड में काम-दहन के पूर्व काम की लीला का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया गया है। लगता है कि कवि ने अपनी सम्पूर्ण कल्पना-शक्ति से इस प्रसंग को रञ्जित करने की चेष्टा की है। परन्तु पूर्ववर्ती पुराण और काव्य-साहित्य के अनुशीलन से निश्चित होता है कि अधिकांश प्रसंग विभिन्न ग्रन्थों से भाव-ग्रहण के रूप में ले लिए गए हैं। क्रमशः कुमारसम्भव, शिवपुराण, सुभाषित रत्न भाण्डागार, स्कन्द पुराण और वामन पुराण से कुछ सदृश प्रसंग उद्धृत किए जाते हैं।

मानस—बाल०, ८८

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा।
लता निहारि नवहिं तरु साखा॥

कुमार सम्भव—३।३९

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखा भुजबन्धनानि।

× × ×

मानस—बाल०, ८५

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी।
को कहि सकइ सचेतन करनी॥

शिवपुराण—रुद्र संहिता, पार्वती खंड, अध्याय १८ श्लोक १०-११

वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुस्सहोऽप्यभूत्।
अचेतसामपि तदा कामासक्तिरभून्मुने॥

× × ×

मानस—बाल०, ८५

मदन अंध व्याकुल सब लोका।
निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥

सुभाषित रत्न भाण्डागार—चतुर्थ भाण्ड, श्लोक २६८

दिवा पश्यति नोलूको काको नक्तं न पश्यति ।
अपूर्वः कोपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति ॥

× × ×

मानस—बाल०, ८५

देव दनुज नर किन्नर ब्याला ।
प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी ।
सदा काम के चेरे जानी ॥

स्कन्द पुराण—माहेश्वर खण्ड, २१।५२

उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपां त्यक्त्वा मनीषिभिः ।
भूतप्रेतपिशाचैश्च मदनेन विमोहितैः ॥

× × ×

मानस—बाल०, ८६

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा ।
कुसुमित नव तरु राजि बिराजा ॥

वामनपुराण—६।६

ततो वसन्ते सम्प्राप्ते किंशुकाज्वलनप्रभाः ।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम् ॥

(२) रावण का अत्याचार और आतंक

तुलसी ने रावण के अत्याचार और आतंक का बड़ा व्यापक चित्र खींचा है। यह वर्णन अधिकांशतः मौलिक है। यत्र-तत्र अध्यात्म-रामायण और भागवत का प्रभाव आ गया है।

मानस—बाल०, १८२

रवि ससि पवन बरुन धनधारी ।
अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा ।
हठि सब ही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी ।
दसमुख बसवर्ती नर नारी ॥

भागवत—७।४।६

सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ।
यक्ष रक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥
यर्वसत्त्वपतिञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥[1]

× ×

मानस—बाल०, १७६

एक बार कुबेर पर धावा ।
पुष्पक जान जीति लै आवा ॥

आध्यात्म-रामायण—उत्तरकाण्ड, २।४६

ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् ।
विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तम पुष्पकम् ॥

× × ×

मानस—बाल०, १७६

कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ ।

अध्यात्म-रामायण—उत्तर०, २।५५ ।

कैलासन्तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः ।

स्फुट-वर्णन

राम-लक्ष्मण के रङ्गभूमि में अवतरण और विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए उल्लेख अलंकार के रूप में जिन उक्तियों की सहायता ली गई है, वे थोड़े से अन्तर के साथ गर्गसंहिता के इसी प्रकार कृष्ण के कंस की रंगभूमि में अवतरण प्रसंग में मिलती है। देखिए—

मानस—बाल०, २४२

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा ।
बहुमुख कर पग लोचन सीसा ॥

१—भागवत में यह उल्लेख हिरण्यकशिपु के अत्याचार के सम्बन्ध में है। तुलसी ने इसे रावण के अत्याचार के प्रसंग में 'फिट' कर दिया है।

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित विदेह विलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता।
इष्ट देव इव सब सुखदाता॥
रामहि चितव भाय जेहि सीया।
सो सनेह सुखु नहिं कथनीया॥

गर्गसंहिता—मथुरा खण्ड ७।३६।३७

मल्लश्च मल्लं च नरा नरेन्द्रं स्त्रियः स्मरं गोपगणा व्रजेशम्।
पिता सुतं दण्डधरं असन्तो मृत्युंच कंसो विबुधा विराजम्॥
तत्वं परं योगिवराश्च भोगा देवं तदा रंगगतं बलेन।
पृथक् पृथक् भावनया अपश्यन् सर्वेजनास्तं परिपूर्ण दैवम्॥

इसी प्रसंग में भागवत की यह उक्ति भी हमारे कवि की प्रेरक हो सकती है।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरोमूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनो सतां क्षिति भुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः॥
मृत्युर्भोजपतेर्विरा विदुषां तत्वं परं योगिनाम्।
वृष्णीनां पर देवनेति विदितो रंग गतः साग्रजः॥

(२) तुलसी के पुष्प-वाटिका वर्णन की पूरी योजना 'प्रसन्न राघव' से प्रभावित है। सरोवर-वर्णन का प्रस्तुत अंश 'प्रसन्नराघव' से लिया गया जान पड़ता है।

मानस—बाल०, २२७

मध्य बाग सरसोह सुहावा।
मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा।
जल खग कूजत गुंजत भृंगा॥

भागवत—७।४।६

सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ।
यक्ष रक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥
यर्वसत्त्वपतिञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥[1]

× ×

मानस—बाल०, १७९

एक बार कुबेर पर धावा ।
पुष्पक जान जीति लै आवा ॥

आध्यात्म-रामायण—उत्तरकाण्ड, २।४६

ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् ।
विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तम पुष्पकम् ॥

× × ×

मानस—बाल०, १७६

कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ ।

अध्यात्म-रामायण—उत्तर०, २।५५ ।

कैलासन्तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः ।

स्फुट-वर्णन

राम-लक्ष्मण के रङ्गभूमि में अवतरण और विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए उल्लेख अलंकार के रूप में जिन उक्तियों की सहायता ली गई है, वे थोड़े से अन्तर के साथ गर्गसंहिता के इसी प्रकार कृष्ण के कंस की रंगभूमि में अवतरण प्रसंग में मिलती है। देखिए—

मानस—बाल०, २४२

बिदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा ।
बहुमुख कर पग लोचन सीसा ॥

१—भागवत में यह उल्लेख हिरण्यकशिपु के अत्याचार के सम्बन्ध में है। तुलसी ने इसे रावण के अत्याचार के प्रसंग में 'फिट' कर दिया है।

जनक जाति अवलोकहिं कैसे ।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी ।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा ।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता ।
इष्ट देव इव सब सुखदाता ॥
रामहि चितव भाय जेहि सीया ।
सो सनेह सुखु नहिं कथनीया ॥

गर्गसंहिता—मथुरा खण्ड ७।३६।३७

मल्लश्च मल्लं च नरा नरेन्द्रं स्त्रियः स्मरं गोपगणा व्रजेशम् ।
पिता सुतं दण्डधरं असन्तो मृत्युंच कंसो विबुधा विराजम् ॥
तत्वं परं योगिवराश्च भोगा देवं तदा रंगगतं बलेन ।
पृथक् पृथक् भावनया अपश्यन् सर्वेजनास्तं परिपूर्ण दैवम् ॥

इसी प्रसंग में भागवत की यह उक्ति भी हमारे कवि की प्रेरक हो सकती है।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरोमूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनो सतां चिति भुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विरा विदुषां तत्वं परं योगिनाम् ।
वृष्णीनां पर देवनेति विदितो रंग गतः साग्रजः ॥

(२) तुलसी के पुष्प-वाटिका वर्णन की पूरी योजना 'प्रसन्न राघव' से प्रभावित है। सरोवर-वर्णन का प्रस्तुत अंश 'प्रसन्नराघव' से लिया गया जान पड़ता है।

मानस—बाल०, २२७

मध्य बाग सरसोह सुहावा ।
मनि सोपान बिचित्र बनावा ॥
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा ।
जल खग कूजत गुंजत भृंगा ॥

प्रसन्नराघव—२।६

इयमसौ यदकलकलहंसोसंसित सरोजराजिराजिता सरसी सरसी करोति मे चेतः ।

(३) जनक की रंगशाला में राम-लक्ष्मण जहाँ-जहाँ आते थे वहीं आनन्द छा जाता था !

मानस—बाल०, २२३

जाहिं जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द ।

यहाँ कितनी कुशलता से कवि ने 'सत्योपाख्यान' के अधोलिखित श्लोक का हिन्दी अनुवाद किया है ।

सत्योपाख्यान—उत्तरार्द्ध १४।२१

जग्मतुर्यत्र यत्रैव राघवौ राम लक्ष्मणौ ।
मंगलानि प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र च भूरिशः ॥

(४) बारात जब अयोध्या पहुँचती है तो पुरनारियाँ पालकी का परदा हटा कर वधुओं को देखती हैं ।

मानस—बाल०, ३४८

सिबिका सुभग उहार उघारी ।
देखि दुलहिन्हि होहिं सुखारी ॥

यह वर्णन ज्यों का त्यों 'सत्योपाख्यान' से लिया गया है ।

सत्योपाख्यान—उत्तरार्ध, १४।१४

उत्साय शिविकावस्त्रं भगिनीभिस्तु जानकीम् ।
उदीक्ष्यात्रत्रवासिन्यो नार्यो याताः प्रसन्नताम ॥

(५) बारात के अयोध्या लौटने के अवसर पर स्वर्ग-लोक से होने वाली पुष्प-वर्षा का प्रसंग 'सत्योपाख्यान' से प्रभावित है । 'सत्योपाख्यान' में इस प्रकार के प्रसंगों का अत्यन्त बाहुल्य है । मानस में भी इस प्रवृत्ति के निर्वाह का आग्रह दिखाई पड़ता है ।

मानस—बाल०, ३४७

होंहि सगुन बरसहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ।

देखिए, यह वर्णन 'सत्योपाख्यान' से कितना मिलता-जुलता है।

सत्योपाख्यान—उत्तरार्ध, ८।१५

दिवि दुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तदाभवत्।
गायन्ति ता विवाहस्य मंगलं विबुधाङ्गना॥

आध्यात्मिक सिद्धान्त

बाल-काण्ड में व्यक्त तुलसी के आध्यात्मिक विचार संक्षेप में इस प्रकार हैं:

ब्रह्म

राम परब्रह्म हैं। समस्त जड़-चैतन्यात्मक विश्व में इनकी व्याप्ति है।[१] विश्व की समस्त चेतना के मूल स्रोत यही हैं।[२] यही निर्गुण ब्रह्म[३], परात्पर नाथ[४] और वेदोक्त ब्रह्म[५] हैं। यह ब्रह्म का निर्विशेष रूप है। पर राम 'मायापति' होने के नाते 'गुणधाम' 'सगुण ब्रह्म'[६] भी हैं। वस्तुतः निर्गुण और सगुण में कोई तात्विक भेद नहीं है। निर्गुण ब्रह्म ही भक्त के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है।[७]

इस सविशेष ब्रह्म का सम्पूर्ण रहस्य अविज्ञात ही होता है। अज्ञ उस रूप को देखकर मोह-मुग्ध हो जाते हैं पर जो राम स्वतः विज्ञान-स्वरूप हैं वे मोहमुग्ध नहीं हो सकते।[८] राम-विषयक मोह की यह धारणा हमारे ही भ्रम और अज्ञान का प्रतिफल है।[९]

माया

माया ही समस्त सृष्टि की रचना करने वाली है।[१०] अखिल विश्व; ब्रह्मादि तथा देवासुर इसी राम की माया के वशवर्त्ती हैं।[११]

१—बाल० ७

२—बाल० ११७

३—बाल० १३, बाल० २०५

४—बाल० ११६

५—बाल० ११८

६—बाल० ११७, बाल० २४१

७—बाल० ११६, बाल० १९८, बाल० २०५

८—बाल० ११६

९—बाल० ११७

१०—बाल० २२५

११—यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा। (बाल० १)

माया स्वतः जड़ है। वह राम के सत्य से प्रतिभासित हो कर ही सत्य सी भासती है।[१] इसीलिए राम को 'मायाधीश' कहा जाता है।[२]

संसार की सभी वस्तुएं माया-प्रसूत होने के कारण प्रतिभासित अतः मिथ्या हैं।[३]

सीता वह आदि शक्ति हैं। जिससे जगत् का उद्भव, उसकी स्थिति और उसका संहार हुआ करते हैं।[४] मनु-सतरूपा की तपस्या पर प्रसन्न होकर राम ने इसी आदिशक्ति के साथ दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया था[५] और कहा था—

आदि सक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोर यह माया॥[६]

सीता ब्रह्म की मूल प्रकृति हैं। वे राम से उसी प्रकार अपृथकस्थिता हैं। जिस प्रकार 'गिरा' से अर्थ अथवा 'जल' से 'बीचि'।[७]

इस लोक में राम (परम ब्रह्म) और सीता (मूल-प्रकृति) से व्यतिरिक्त कुछ नहीं है। इसीलिए समस्त लोक में सीता-राम की व्याप्ति समझकर तुलसीदास सीता-राम की एक साथ वन्दना करते हैं—

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥[८]

जीव

जीव-ईश्वर के भेदाभेद के सम्बन्ध में बाल-काण्ड में कोई उल्लेख नहीं है। केवल एक अर्द्धाली में जीव का धर्म निरूपित कर दिया गया है।[९]

१—बाल० ११७ और 'यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।' (बाल० १)।

२—बाल० २००

३—बाल० ११७-१८

४—उद्भव स्थिति संहारकारिणीं...सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। (बाल० १)

५—बाल०, १४८

६—बाल०, १५२

७—बाल०, १८

८—बाल०, ८

९. बाल०, ११६

भक्ति

भक्ति-तत्व का विवेचन भी बाल-काण्ड में विस्तार से नहीं हुआ है। कहा गया है कि चार प्रकार के राम-भक्त हैं जिनमें ज्ञानी भक्त ही प्रभु को विशेष प्रिय हैं।[1] इस नर-देह की सार्थकता भक्ति में ही है।[2] नाम-जप और शिव-भक्ति ये राम-भक्ति की दो मुख्य भूमिकाएं हैं।

---

१. बाल०, २२

२. बाल०, ११३

ब्रह्म

ब्रह्म निगुण है, इस तथ्य को गोस्वामी जी ने बाल-काण्ड के अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है—

एक अनीह अरूप अनामा ।
अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
× × ×
अगुन अखण्ड अनन्त अनादि ।
जेहिं चिन्तहि परमारथ बादी ॥
× × ×
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।

उद्देश्य के सम्बन्ध में किसी गुण का विधान करना उस उद्देश्य को सीमित कर देना है इसीलिए तुलसी ने मूल द्रव्य को अविशेष और निर्गुण कहा है । उपनिषदों का भी यही सिद्धान्त है । गुणों के अत्यन्त अभाव के कारण ब्रह्म का भावात्मक वर्णन सम्भव नहीं है । उसे हम निषेधमुखेन ही जान सकते हैं, इसीलिए उपनिषद् सदा 'नेति नेति' कह कर उसका परिचय देती है—

'स एष नेति नेति आत्मा ।'[1]

उपनिषदों में जहाँ परब्रह्म के स्वरूप का कथन है वहाँ 'न' अव्यय का बाहुल्य है । ईषोपनिषद्[2] ने ब्रह्म को अकाय और अव्रण कहा । कठ[3] ने कहा कि वह अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, अगन्ध, अनादि और अनन्त है । मुण्डक[4] ने उसे अद्रेश्य, अग्राह्य, अवर्ण, अगोत्र, अचक्षु, अश्रोत्र, अव्यय और अपाणिपाद बतलाया । बृहदारण्यक[5] के अनुसार वह अस्थूल, अनणु, अह्रस्व तथा अदीर्घ है ।

१—बृहदारण्यक उप०, ४।४।२२

२—ईशोपनिषद्, ८

३—कठोपनीषद्, ३।१५

४—मुण्डकोपनिषद्, १।१-४ ।,३।१-२।,२-१४।

५—बृहदारण्यक उप०, ३।६।६

उपनिषदों में जिस निर्गुण ब्रह्म का व्याख्यान है वही गोस्वामी जी का निर्गुण ब्रह्म है जिसके सम्बन्ध में उन्होंने 'जेहि इमि गावहिं बेद', 'नेति नेति जेहि बेद निरूपा' और 'महिमा निगम नेति कह कहई' आदि कहा है। श्वेताश्वर के 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः'[१] सदृश 'पुरुषं पुराणम्' का वर्णन तुलसी ने 'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना' आदि पदों में किया और 'सोऽहम्' तत्व की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या ज्ञान-दीपक के रूपक में 'सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा' के क्रम में की।[२]

निर्विशेष ब्रह्म मन और बुद्धि का अविषय है—

मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥[३]

श्रुति में भी कहा गया—

संविदन्ति न यं वेदा विष्णुर्वेद न वै विधिः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥

सभी आस्तिक दर्शनों में ब्रह्म को व्यापक स्वीकार किया गया है। पर वेदान्त को छोड़कर सभी आस्तिक दर्शन ब्रह्म को देश-काल से अपरिच्छिन्न तो मानते हैं पर वस्तु से नहीं। गोस्वामी जी ब्रह्म को देश-काल-वस्तु सभी से अपरिच्छिन्न मानते हैं।[४] यह वेदान्त सिद्धान्त है जिसका बीज उपनिषदों में वर्त्तमान है।

छन्दोग्य[५] का मन्त्र है—'मनोब्रह्मेति........आकाशो ब्रह्मेति प्राणं ब्रह्म कं ब्रह्म खंब ब्रह्मेति।'

छान्दोग्य ने यह भी घोषित किया कि ब्रह्म सृष्ट पदार्थों से पृथक नहीं, उन्हीं में समाविष्ट है[६] जिसके समर्थन में तैत्तिरीय[७] ने कहा—

१—श्वेतावतर उप० ३।१२
२—यह उत्तर काण्ड का प्रसंग है।
३—बाल०, ३४१
४—व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता।
५—छान्दोग्य उप०, ३।१।८; ४।१०।५
६—वही, ६।३।१-४
७—तैत्तिरीय भृगुवल्ली, १

"तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचमिति। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ति येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति"।[१] इस पर बृहदारण्यक ने व्याकृत् और अव्याकृत् अवस्था की एकरूपता पर प्रकाश डाला[२] और इन सारी अवस्थाओं के निष्कर्ष स्वरूप छान्दोग्य ने ब्रह्म की व्याप्ति का सूत्र 'सर्वं खल्विदंब्रह्म[३]' निर्मित किया।

यह निर्विशेष ब्रह्म का व्याख्यान है। अगुण और सगुण दोनों रूपों का विवेक कराने के लिए गोस्वामी जी ने एक दृष्टान्त उपस्थित कया है।

एक दारुगत देखिअ एकू।
पावक सम जुग ब्रह्मविवेकू॥[४]

अग्नि सभी काष्ठ में व्यापक है किन्तु यह उसका निर्गुण रूप है। वहाँ स्पर्श से दाह नहीं होता। किन्तु जब वह अग्नि प्रकट रूप में आ जाती है तो रूप आदि गुणों से सगुण हो जाती है। यही तर्क कठवल्युपनिषद् में भी दिया गया है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव॥[५]

उपनिषदों में भी ब्रह्म के दो स्वरूपों का विशद वर्णन किया गया है— सविशेष अथवा सगुण रूप, निर्विशेष अथवा निर्गुण रूप। बृहदारण्यक[६] का मंत्र है—

'द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैवामूर्तञ्च मर्त्याञ्चामृतञ्चस्थितञ्च यच्च सच्चत्यञ्च'

१—यहाँ स्पष्टतः ब्रह्म को वस्तु से भी अपरिछिन्न कहा गया है।

२—बृहदारण्यक उप०, १।४।७

३—छान्दोग्य उप०, ६।१४।१

४—बाल०, २३

५—कठवल्युपनिषद् २।५।६

६—बृहदारण्यक उप० २।३।१

अर्थात् ब्रह्म के दो रूप हैं—मूर्त्त और अमूर्त्त मर्त्य और अमर्त्य, सत्य और असत्य। मैत्री[1] ने भी ब्रह्म के शरीरी और अशरीरी, काल और अकाल, स्वर और अस्वर इन दो रूपों की कल्पना की थी। मुण्डक[2] प्रश्न[3] तथा श्वेताश्वतर[4] में भी ब्रह्म के उभय रूपों का उल्लेख है।

पर सगुण तथा निर्गुण, सोपाधि तथा निरुपाधि आदि शब्द एक ही ब्रह्मतत्त्व के निर्देशक हैं क्योंकि ब्रह्मतत्त्व की प्रतिपादक श्रुतियों ने एक ही मंत्र में उभयलिंग शब्दों का प्रयोग किया है। मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

'यत् तद् अद्रेश्यमग्राह्यम्, अगोत्रम्, अवर्णम्, अचक्षुःश्रोतम् तद् अपाणिपादम्'[5], नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद् भूतयोनिं[6] परिपश्यन्ति धीराः।[7]

इस प्रकार जब एक ही मंत्र उभयविध पदों के द्वारा ब्रह्मतत्व का प्रतिपादन कर रहा है, तब निश्चित है कि उसमें कोई तात्विक भेद नहीं है। ईशोपनिषद् का मंत्र है—

१—मैत्री उप० ६।१५ द्वेवाव ब्रह्मणे रूपे कालश्चाकालश्च।
वही ६।२२ अथान्यत्राप्युक्तं द्वेवाव ब्रह्मणो अभिध्येये
शब्दाश्शब्दश्च।

२—मुण्डकोपनिषद् २।१।२ दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः
सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।

३—प्रश्नोपनिषद् ५।२
एतद्वै सत्यकाम परं चापरं ब्रह्म यदोंकारः।

४—श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१३
वह्नेर्यथायोगिनस्तस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेण देहे॥

५—यहाँ निर्विशेष ब्रह्म की सूचना है।

६—इन पदों से सविशेष ब्रह्म का निर्देश किया गया है।

७—मुण्डक-उपनिषद् १।१ ६

स पर्यायगच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम पापविद्धं कविर्मनीषी ।
परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्योतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतोभ्यः समाभ्यः ॥[1]

इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म के निर्विशेष और सविशेष दोनों रूपों की चर्चा है। निर्विशेष ब्रह्म के वर्णन (?) के लिए तुलसी ने श्रुतियों को अपना उपजीव्य बनाया पर जहाँ उन्होंने सविशेष ब्रह्म का प्रत्याख्यान किया है वहाँ उन्होंने भागवत् को अपना आधार बनाया। आचार्य पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने लिखा है—

"रामचरित-मानस या तुलसी रामायण में भागवत सिद्धान्त भरे पड़े हैं। केवल इतना ही अन्तर है कि भागवत में जो स्थान कृष्ण को दिया गया है, वही स्थान रामायण में रामचन्द्र को दिया गया है, और भागवत में जहाँ माधुर्य-भाव को स्थान दिया गया है, वहाँ रामायण में प्रीति-भाव को।······भागवत पुराण के अनुसार भगवान् बैकुण्ठ आदि धामों में तीन रूप से निवास करते हैं—स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेशरूप। श्रीकृष्णचन्द्र भगवान के स्वयंरूप हैं, रामचरित-मानस के राम भी ऐसे ही हैं।······गोस्वामी तुलसीदास ने प्रत्येक व्यक्ति के साथ भगवान् के समागम के प्रसङ्ग में बड़ी सावधानी से उसका मुग्ध होना बताया है। इस विषय में रामचरित-मानस के राम और भागवत के श्रीकृष्ण समान हैं।"[2]

निर्विशेष ब्रह्म सविशेष क्यों हो जाता है, निर्गुण ब्रह्म गुणों का आश्रय क्यों ग्रहण करता है, इस प्रश्न के कई उत्तर हैं। गीता में भगवान् ने कहा जब-जब धर्म का ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब-तब मैं अपने आपको मनुष्य रूप में सृष्ट करता हूँ—

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थान धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

तुलसी ने भी कहा—

जब-जब होई धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥[3]
··· ··· ···

१—ईशोपनिषद्, ८।

२. हिन्दीसाहित्य की भूमिका, पृ० ७१—७४

३. भगवद्गीता, ४।७

तब-तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥[१]

पर परमानन्द भगवान् श्रीराम के इस लोक में अवतीर्ण होने का प्रयोजन सुररञ्जन, भूभार-भञ्जन तो है ही प्रधान कारण उपासकों और भक्तों का वह अनन्य प्रेम और वह अनपायिनी भक्ति है जो भगवान् को साक्षात् लोचन-गोचर होने के लिए विवश करती है।

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप॥
(बाल०, २०५)

यहाँ तुलसी ने स्पष्टतः भागवत का अनुसरण किया है—

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा नामरूपे गुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वभायया तान्यनुकालमृच्छति॥[२]

इस राम के जन्म-कर्म अगणित हैं—

राम नाम गुन चरित सुहाये।
जनम करम अगनित श्रुति गाये॥
यथा अनन्त राम भगवाना।
तथा कथा कीरति गुन गाना॥[३]

भागवत में स्वयं भगवान् कहते हैं—

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मे अङ्गः सहस्रशः।
न शक्यन्तेनु संख्यातु मनन्त त्वान्ययापि हि॥
क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।
गुणकर्मभिधानानि न मे जस्मानि कहिर्चित्॥[४]

भागवत में घोषणा की गई है कि तत्ववेत्ता लोग जिस अद्वैत ज्ञान को तत्व कहते हैं वही तत्व ब्रह्म परमात्मा और भगवान इन तीन नामों से निर्दिष्ट होता है—

---

१. मानस, बाल०, १२१
२. भागवत, ८।३।८
३. मानस, बाल० ११४
४. भागवत, १०।५१।३९

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परामात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए तुलसीदास ने लिखा—

व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता ।
अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
सोइ सच्चिदानंद घनस्यामा ।
अज विज्ञानरूप गुनधामा ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता ।
समदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्गुन निराकार निर्मोहा ।
नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥

गोस्वामीजी के सगुण मतवाद के सम्बन्ध में एक तथ्य और उल्लेखनीय है। भक्ति के लिए निर्विशेष ब्रह्म से तो काम चल नहीं सकता था और गोस्वामी जी को उस भक्ति की फिर से प्रतिष्ठा करनी थी जिसको गोरख के योग ने भगा दिया था (गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग)। योगियों और सूफियों के मेल से जो निर्गुण संत-मत चल पड़ा था और जिसके कबीरदास प्रवर्त्तक बन बैठे थे उसका बहुत कुछ प्रचार हो गया था। तुलसी ने अपना क्षोभ प्रगट करते हुए लिखा—

सबदी साखी दोहरा कहि किहिनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगति कलि निंदहि वेद पुरान ॥

तुलसी ने देखा कि इन नाना मत मतान्तरों के प्रचलन से भक्ति का वह तत्व ही लुप्त हो जायगा जो एक अमृत स्रोत की भाँति भारतीय जीवन में प्रवाहित होता आ रहा है इसीलिए उन्होंने गोरख इत्यादि महात्माओं द्वारा प्रचारित जटिल धर्म-सम्प्रदायों का विरोध किया और सगुण मतवाद की प्रतिष्ठा की।

माया

मानस के बाल-काण्ड में तुलसी ने माया के स्वरूप की विवेचना की है। 'माया' शब्द के प्रयोग के उदाहरण यद्यपि उपनिषद्[1] और पुराणों[2] में मिलते हैं पर उपनिषदों में इस शब्द का व्यवहार उसी अर्थ में नहीं हुआ है[3] जिस अर्थ में मध्यकालीन वेदान्त ग्रन्थों में। पुराणों में लौकिक मनोवृत्ति[4] की ही प्रधानता है। शङ्कराचार्य

१—'माया' शब्द बृहदारण्यक में एक बार, प्रश्न में एक बार और श्वेताश्वतर में तीन स्थलों पर व्यवहृत हुआ है।

(क) बृहदारण्यक उप०, २।५।१६

(ख) प्रश्न उप० १।१६

(ग) श्वेताश्वतर उप० १।१०, ४।६, ४।१०

२—देखिए:

(क) भागवत पुराण, २।६।३३ और १०।७३।११

(ख) कूर्म पुराण (उपरिभाग) ६।२-३

(ग) वराह पुराण १२५।८-१०, ४५, ४८

(घ) विष्णु पुराण ५।३०।१४-१६

३—"...गौड़पादाचार्य के अनुकूल शङ्कराचार्य ने माया शब्द का अर्थ 'छल-अविद्या' से किया किन्तु वेद तथा उपनिषदों में इस शब्द का व्यवहार इस अर्थ में नहीं मिलता।"

—श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा: 'भारतीय ईश्वरवाद' पृ० १६३

४—"पुराणों में लौकिक मनोवृत्ति की ही प्रधानता है। यहाँ लौकिक शब्द को हम कोई अवज्ञा के अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहे हैं, बृहत्तर जन-समाज से जिसका संबंध है, उसी को हम यहाँ लौकिक कह रहे हैं।"

—श्री शशिभूषण दास गुप्तः 'श्री राधा का क्रम-विकास', पृ० ७०

विचित्रतया इस माया की शक्ति प्रचारित की[१] और अनेक प्रमाणों द्वारा जगत् का मिथ्यात्व प्रतिपादित किया। तुलसी का 'मायावाद' शङ्कराचार्य के मायावाद के अनुरूप ही है[२] और माया सम्बन्धी अपने निरूपण में वे शङ्कर के ऋणी हैं। इस प्रसंग में समानान्तर पंक्तियों को उद्धृत कर सिद्धान्त की समग्रता को पहचान पाना और किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सरल नहीं। इसीलिए यहाँ प्रथमतः शङ्कराचार्य तदनन्तर तुलसी का सिद्धान्त निरूपित किया गया है। इस विवेचन के आलोक में तुलसी पर शङ्कर के प्रभाव का तथ्य स्पष्ट हो जायगा।

१—द्रष्टव्यः

(क) A constructive survey of upanishadic Philosophy—R. D. Ranade, P. 223

(ख) Hindu Pantheism—J. A. jacob. P. 35

(ग) Prabhudatt Sastri—The doctrine of Maya, P. 49

(घ) Philosophy of Shankara—A. Buch, P. 119

(घ) The Vedanta—V.S. Ghate P. 29

२—द्रष्टव्यः

(क) महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी—'गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार', तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड ३

(ख) पं० विजयानन्द त्रिपाठी—'तुलसीदास जी के दार्शनिक विचार' कल्याण, जुलाई १९३७

(ग) नगेन्द्रनाथ बसु—'हिन्दू विश्वकोष,' भाग ९ पृ० ६८६

(घ) डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—'तुलसी दर्शन,' अध्याय ५

(ङ) श्री विश्वभर नाथ उपाध्याय—'हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि', अ० १३

शंकर का मायावाद

मध्यकालीन वेदान्त ने 'सोऽहं' तथा ब्रह्मवाद को उपजीव्य मान कर ब्रह्म की नित्यता और जगत के मिथ्यात्व का जैसा प्रचार किया उसका स्पष्ट अङ्कन प्रथमतः[1] गौड़पादाचार्य की ही कारिका में उपलब्ध होता है।[2] उनके अनुयायियों में शङ्कराचार्य सर्वाधिक तर्कशील प्रतिभा के अधिकारी थे।

सृष्टि का वैतथ्य सिद्ध करते हुए शङ्कराचार्य ने अपने तर्कों में रज्जु में सर्प का भ्रम, सीप में चाँदी की भ्रान्ति, जादूगर की ऐन्द्रजालिक रचना, स्वप्न और जागृत सृष्टि, अघटनघटनापटी यसी आदि प्रमाणों को उपन्यस्त किया और उनके आधार पर स्थिर किया—

'तस्माज्जागरितेऽपि वैतथ्यम् स्मृतमिति।'

और 'स्वप्न जागरिते स्थाने स्वेकमाहुर्मनीषिणः'[3]

को स्वप्न कहकर शङ्कराचार्य ने 'जाग्रद्दृश्यानां भावानां वैतथ्यम्'— अर्थात् 'जागृतावस्था में अनुभूत दृश्यं मिथ्या है'—की प्रतिज्ञा का हेतु दिया—'दृश्यमानत्वात्' और उदाहरण प्रस्तुत किया—'स्वप्नदृश्यभाववत्' स्वप्न में दृष्ट वस्तुओं के सदृश।

१—It appears, however, to be undoubted that one of the main doctrine of the later vedanta that of Maya has not yet been developed in the Vedanta Sutra. It is first met with in the karika of Gaudpada.

—Mac Donell : India's Past : P. 147–48

२—गौड़ पाद कारिका, २।३१

स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा,
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः।

३—वही, २।५

शङ्कर के मत से एक मात्र कारण–'सत्ता' अविनाशी तथा निर्विकार है। इस एक मात्र स्वप्रकाश, अखण्ड चैतन्य सत्ता के अतिरिक्त कार्यभूत जगत् मिथ्या है। यह जगत् जड़ माया का तो परिणाम है पर चेतन ब्रह्म का विवर्त। कार्य की अनिर्वचनीयता की ही पारिभाषिक संज्ञा 'विवर्त' है। 'सिद्धान्तलेश' में अप्पय दीक्षित ने 'परिणाम' और 'विवर्त' का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उपादान कारण का समानधर्मी अन्यथा भाव परिणाम और उपादान से विलक्षण अन्यथा भाव विवर्त्त है।[1] अर्थात् तात्विक परिवर्त्तन को विकार और अतात्विक परिवर्त्तन को विवर्त्त कहते हैं।[2]

शङ्कराचार्य अध्यास (भ्रम) का अर्थ करते हैं, पूर्ववर्त्ती अनुभव का परवर्त्ती आधार में भासित होना। शङ्कर ने 'चतुःसूत्री में मिथ्याज्ञान या अध्यास का लक्षण इस प्रकार किया है—'स्मृति रूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः।' अर्थात् पहले देखे हुए पदार्थ स्मृति रूप से अन्य पदार्थ में जो आभास है वही अध्यास या मिथ्या ज्ञान है।[3] शङ्कराचार्य ने कहा है कि इसका अर्थ कई प्रकार से किया जा सकता है[4] पर किसी भी उपपत्ति से इस तात्पर्य का खण्डन नहीं हो सकता कि एक पदार्थ में अन्य पदार्थ या अन्य पदार्थ के धर्म का आभास ही 'अध्यास' है—

सर्वथाऽपित्वन्य धर्मावभासतां न व्यभिचरति।

१—कारणसलक्षणोऽन्यथाभावः परिणामः तद्विलक्षणो विवर्तः—'सिद्धान्त लेश', प्रथम परिच्छेद, पृ० ५८।

२—द्रष्टव्यः 'ब्रह्मसूत्र' २।१।७ पर शाङ्कर भाष्य।

३—वर्त्तमान मनोविज्ञान की भाषा में इसे एक प्रकार का बहिरारोप कहेंगे। जहाँ-जहाँ भ्रान्त प्रत्यक्ष (Illusion) होगा वहाँ-वहाँ ऐसा अध्यास (Projection) होता है।

४—(क) तं केचिदन्यत्रान्यधर्माध्यासऽति वदन्ति।
(ख) केचित्तु यत्र यदध्यास्तद्विवेकाऽग्रह निबन्धनो भ्रम इति।
(ग) अन्ये तु यत्र यदध्यासस्तस्यैव धर्मत्व कल्पना माचक्षतेइति।

रज्जु में सर्प या शुक्ति में रजत की भ्रान्ति की व्याख्या विभिन्न दर्शनों में विभिन्न प्रकार से हुई है।[1] वेदान्ती 'अनिर्वचनीय ख्याति' मानते हैं। शुक्ति में रजत का जो भ्रम है उसे 'प्रातिभासिक रजत' कहते हैं। इस रजत-दर्शन को न तो हम सत् कह सकते हैं (सच्चेन्न बाध्येत्) क्योंकि भ्रम नष्ट होने के पश्चात् शुक्ति का ही ज्ञान शेष रहता है, और न असत् ही (असच्चेत् न प्रतीयेत्) क्योंकि भ्रम काल में रजत की प्रतीति होती है। वस्तुतः जो पदार्थ सद्रूप या असद्रूप से वर्णित न किया जा सके उसकी ही शास्त्रीय संज्ञा अनिर्वचनीय है।

ब्रह्मसूत्र के शारीरिक भाष्य के अयोद्घात् में आचार्य शङ्कर ने 'अध्यास' के स्वरूप का निर्णय एक पंक्ति में कर दिया है—'अध्यासो नाम अतस्मिन् तद्बुद्धिः।' अर्थात् तत्पदार्थ में अतद् (तद्भिन्न) पदार्थ के स्वरूप का आरोप करना 'अध्यास' कहलाता है। जगत् के समस्त प्रमाण-प्रमेय व्यवहार की मूल-भित्ति यही अध्यास है। अध्यास का ही दूसरा नाम अध्यारोप है।[2] अध्यास कब से चला इसके उत्तर में आचार्य का कथन है कि कर्तृत्व-भोक्तृत्व का प्रवर्त्तक यह अध्यास स्वाभाविक है, अनादि तथा अनन्त है—एवमयनादिरनन्तोनैसर्गिको-ऽध्यासः मिथ्याप्रत्ययरूपः कर्तृत्व-भोक्तृत्व-प्रवर्त्तकः सर्वलोक प्रत्यक्षः।

तुलसी का मायावाद

मङ्गला चरण में गोस्वामी जी कहते हैं—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा-
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारण परं रामाख्यमीशं हरिम्॥

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मादि देवता और असुर जब जिसकी माया के वशवर्त्ती हैं और जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण जगत् सत्य सा प्रतीत हो रहा है, वैसे ही जैसे भ्रम-काल में रज्जु की सत्ता से सर्प

---

१. आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्याति ख्यातिरन्यथा
तथाऽनिर्वचन—ख्यातिरित्येतत्ख्याति पंचकम्।
योगाचारो माध्यमिकस्तथा मीमांसका अपि
नैयायिका मायिनश्च प्रायः ख्यातिः क्रमाजगुः॥

२. वस्तुनि अवस्त्वारोपः अध्यारोपः—सदानन्दः वेदान्तसार पृ० ७।

सत्य सा प्रतीत होता है और संसार रूप समुद्र को तैर जाने की इच्छा रखने वालों के लिए जिसके चरण ही नौका रूप हैं उन सब कारणों से भी परे रामाख्य जगदीश्वर हरि को मैं प्रणाम करता हूँ।※

उक्त श्लोक में स्पष्ट ही शङ्कर का मायावाद उल्लिखित हुआ है जगत् माया-प्रसूत अतः असत्य है, वह ब्रह्म की सत्ता से ही भासित होता है अर्थात् वह ब्रह्म की सत्ता से ही सत्तावान् प्रतीत होता है, यही शाङ्कर सिद्धान्त है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि वैष्णव आचार्यों-ने कहीं भी जगत् को मायिक एवं असत्य नहीं स्वीकार किया। शङ्कर दर्शन में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ये मायाविशिष्ट चैतन्य की उपाधिभेद भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ स्वीकार की गई हैं जो शुद्ध चैतन्य पर ही अधिष्ठित हैं। गोस्वामी जी 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा' द्वारा यही कहना चाहते हैं।

अब दूसरा प्रसंग लीजिए। ब्रह्मा विष्णु का स्तव करते हुए कहते हैं—

जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहायन दूजा।[१]

अर्थात् भगवान ही सृष्टि के आदि कारण हैं। वे अपने संकल्प से ही सृष्टि करते हैं (स ईक्षत बहुस्यां प्रजायेय)। 'संग सहाय न दूजा' का यही अर्थ है। सृष्टिकर्त्ता किसी वस्तु की अपेक्षा न कर सम्पूर्ण

※"यद्यपि पूर्वोक्त श्लोक में कहीं-कहीं 'अमृषैव' पाठ मिलता है, जिससे 'जगत सत्य ही प्रतीत होता है' ऐसा कुछ विपरीत अर्थ हो जाने की सम्भावना हो सकती है, किन्तु 'यत्सत्त्वात्' और 'रज्जौयथाऽहेर्भ्रमः' इन पदों का इस अर्थ में कुछ भी स्वारस्य नहीं रहता। क्योंकि जगत् सत्य मान लेने पर वह ब्रह्म की सत्ता से भासित नहीं हो सकता, किन्तु अपनी ही सत्ता से भासित होगा। और इस पक्ष में रज्जु सर्पवाला भ्रम का दृष्टान्त भी नहीं घटता, क्योंकि जगत को भ्रम का विषय मायावादी ही बताते हैं, दूसरे नहीं। अतः इस श्लोक का तात्पर्य मायावाद में ही है।"

पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीः 'गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार', पृ० ६५, तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड ३, ना० प्र० स०, काशी।

१—बाल०, दोहा १८५ के बाद तीसरा छन्द।

जगत् की सृष्टि करता है उसी प्रकार जैसे स्वप्न में जीव सम्पूर्ण पदार्थों को रचता है।

शिव-पार्वती-संवाद में मायावाद और विवर्त्तवाद का स्पष्ट व्याख्यान मिलता है। रज्जु में सर्प का, सीप में रजत का, सूर्य-किरणों में मृग-जल का अध्यास आदि विवर्त्तवाद के दृष्टान्त हैं। पार्वती की शंका का समाधान करते हुए शङ्कर कहते हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
एहि विध जग हरि आश्रित रहइ।
जदपि असत्य देत दुख अहइ॥
जौं सपने सिर काटै कोई।
बिनु जागें न दूरि दुख होई॥[1]
(बाल० ११७-१८)

जगत् और ब्रह्म में प्रकाश्य-प्रकाशक-सम्बन्ध है। ब्रह्म ज्ञान-गुण-धाम मायाधीश है। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसका अधीश्वर बनकर ही ब्रह्म निर्गुण से सगुण हो जाता है। माया जड़ है उसमें स्वतः प्रकाशन की शक्ति नहीं है। परिच्छेद के अवभास को अनात्माभास कहते हैं, वही अविद्या, जड़शक्ति, शून्य या प्रकृति कहलाता है। ब्रह्म चेतन है। उसकी सत्ता से जड़ माया (संसार) मोह (अज्ञान) की सहायता से सत्य सी प्रतीत होती है।

सीप में रजत त्रिकाल में असत्य है। सीपी की सत्यता से ही रजत में सत्यता की प्रतीति होती है। सीपी का इदमंश रजत में प्रतिभा-

---

१—तुलनीय :

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्॥
—शङ्कराचार्य : आत्मबोध : श्लोक० ६

सित होता है और सीपी का नील पृष्ठ त्रिकोणादि रूप तिरोहित रहता है। इसी भाँति ब्रह्म में इस मिथ्या जगत की प्रतीति होती है और ब्रह्म के आनन्द आदि गुण तिरोहित हो जाते हैं और सीपी में रजत की भाँति ब्रह्म में जगत् भासित होने लगता है।[1] अब तुलसीदास दूसरे प्रकार के भ्रम की चर्चा करते हुए मरीचिका का दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। सूर्य किरणों के संयोग से सिकता में जल की भ्रान्ति होती है यद्यपि जल वहाँ त्रिकाल में असत्य है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति मात्र होती है, संसार-दर्शन की निवृत्ति नहीं होती। 'भ्रम न सकै कोउ टारि' का यही अभिप्राय है।

सीप में रजत और भानुकर में वारि की भ्रान्ति-मात्र होती है। इसी भाँति ब्रह्म में जगत् की भ्रान्ति मात्र होती है। जगत् वस्तुतः कभी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रातिभासिक है, मिथ्या है। परन्तु यह जगत् असत्य होने पर भी दुःख देता है—वैसे ही जैसे सपने में कोई सिर काटे तो पाड़ा होगी। सिर का कटना और तज्जन्य पीड़ा सब भ्रान्ति मात्र है। पीड़ा से मुक्त होने का एक मात्र उपाय जग जाना ही है। इस स्वप्न के उदाहरण से कवि का अभिप्रेत है कि स्वप्न के विकल्प में केवल मन ही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन होकर विचित्रता से भासता है। इसी प्रकार शुद्ध संवित् भी विचित्राकार (जगदाकार) से भासती है।

इसी शिव-पार्वती संवाद में दूसरे स्थल पर शंकर कहते हैं—

झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहचाने॥

१—यहाँ माया की दो शक्तियों—आवरण और विक्षेप—की चर्चा की गई है। इन्हीं की सहायता से वस्तुभूत ब्रह्म के वास्तव रूप को आवृत्त कर उसमें अवस्तुरूप जगत् की प्रतीति का उदय होता है। 'दृग्दृश्य विवेक' में माया की इन दो शक्तियों का उल्लेख है—

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्॥
अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्म सर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्॥

—दृग्दृश्यविवेक, श्लोक १३, १५

जगत् की सृष्टि करता है उसी प्रकार जैसे स्वप्न में जीव सम्पूर्ण पदार्थों को रचता है।

शिव-पार्वती-संवाद में मायावाद और विवर्त्तवाद का स्पष्ट व्याख्यान मिलता है। रज्जु में सर्प का, सीप में रजत का, सूर्य-किरणों में मृग-जल का अध्यास आदि विवर्त्तवाद के दृष्टान्त हैं। पार्वती की शंका का समाधान करते हुए शङ्कर कहते हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
एहि विध जग हरि आश्रित रहइ।
जदपि असत्य देत दुख अहइ॥
जौं सपने सिर काटे कोई।
बिनु जागें न दूरि दुख होई॥[1]
(बाल० ११७-१८)

जगत् और ब्रह्म में प्रकाश्य-प्रकाशक-सम्बन्ध है। ब्रह्म ज्ञान-गुण-धाम मायाधीश है। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसका अधीश्वर बनकर ही ब्रह्म निर्गुण से सगुण हो जाता है। माया जड़ है उसमें स्वतः प्रकाशन की शक्ति नहीं है। परिच्छेद के अवभास को अनात्माभास कहते हैं, वही अविद्या, जड़शक्ति, शून्य या प्रकृति कहलाता है। ब्रह्म चेतन है। उसकी सत्ता से जड़ माया (संसार) मोह (अज्ञान) की सहायता से सत्य सी प्रतीत होती है।

सीप में रजत त्रिकाल में असत्य है। सीपी की सत्यता से ही रजत में सत्यता की प्रतीति होती है। सीपी का इदमंश रजत में प्रतिभा-

---

१—तुलनीय :

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्॥
—शङ्कराचार्य : आत्मबोध : श्लोक० ६

सित होता है और सीपी का नील पृष्ठ त्रिकोणादि रूप तिरोहित रहता है। इसी भाँति ब्रह्म में इस मिथ्या जगत की प्रतीति होती है और ब्रह्म के आनन्द आदि गुण तिरोहित हो जाते हैं और सीपी में रजत की भाँति ब्रह्म में जगत् भासित होने लगता है।[1] अब तुलसीदास दूसरे प्रकार के भ्रम की चर्चा करते हुए मरीचिका का दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। सूर्य किरणों के संयोग से सिकता में जल की भ्रान्ति होती है यद्यपि जल वहाँ त्रिकाल में असत्य है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति मात्र होती है, संसार-दर्शन की निवृत्ति नहीं होती। 'भ्रम न सकै कोउ टारि' का यही अभिप्राय है।

सीप में रजत और भानुकर में वारि की भ्रान्ति-मात्र होती है। इसी भाँति ब्रह्म में जगत् की भ्रान्ति मात्र होती है। जगत् वस्तुतः कभी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रातिभासिक है, मिथ्या है। परन्तु यह जगत् असत्य होने पर भी दुःख देता है—वैसे ही जैसे सपने में कोई सिर काटे तो पाड़ा होगी। सिर का कटना और तज्जन्य पीड़ा सब भ्रान्ति मात्र है। पीड़ा से मुक्त होने का एक मात्र उपाय जग जाना ही है। इस स्वप्न के उदाहरण से कवि का अभिप्रेत है कि स्वप्न के विकल्प में केवल मन ही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन होकर विचित्रता से भासता है। इसी प्रकार शुद्ध संवित् भी विचित्राकार (जगदाकार) से भासती है।

इसी शिव-पार्वती संवाद में दूसरे स्थल पर शंकर कहते हैं—

झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहचाने॥

१—यहाँ माया की दो शक्तियों—आवरण और विक्षेप—की चर्चा की गई है। इन्हीं की सहायता से वस्तुभूल ब्रह्म के वास्तव रूप को आवृत्त कर उसमें अवस्तुरूप जगत् की प्रतीति का उदय होता है। 'दृग्दृश्य विवेक' में माया की इन दो शक्तियों का उल्लेख है—

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्त जगत् सृजेत्॥
अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेद बहिश्च ब्रह्म सर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्॥
—दृग्दृश्यविवेक, श्लोक १३, १५

जेहि जाने जग जाइ हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥[1]
(बाल० ११२)

वस्तुतः मिथ्या और सत्य का विभाग बुद्धि के अधीन है। जिस पदार्थ को विषय करने वाली बुद्धि का नाश नहीं होता वह पदार्थ सत्य है और जिसको विषय करने वाली बुद्धि नष्ट हो जाती है वह मिथ्या है। मिथ्या विषयक बुद्धि का अस्तित्व तभी तक है, जब तक सत्य का ज्ञान नहीं होता। सत्य का ज्ञान होते ही मिथ्या विषयक बुद्धि का लोप हो जाता है। वैसे ही जैसे जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता तब तक सर्प विषयक बुद्धि बनी रहती है और रज्जु का ज्ञान होते ही सर्प विषयक बुद्धि लोप हो जाता है अतः रज्जु सत्य है और उसमें भासित होने वाला सर्प मिथ्या।[2]

इसी न्याय से यहाँ संसार का मिथ्यात्व सिद्ध किया गया है। ब्रह्म के ज्ञान से संसार खो जाता है, अर्थात् संसार को विषय करने वाली बुद्धि नष्ट हो जाती है उसी तरह जैसे जगने पर स्वप्न को विषय करने वाली बुद्धि का लोप हो जाता है। अतः सिद्ध है कि ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है।

तात्पर्य यह कि जहाँ सीप में रजत आभासित होता है वहाँ सीप-रूप अधिष्ठान ही सत्य है, रजत अनिर्वचनीय मिथ्या है। जहाँ सूर्य-किरणों के संयोग से सिकता में जल का भ्रम हो जाता है वहाँ जल भी अनिर्वचनीय मिथ्या है।[3] वह सूर्य–किरणों की सत्ता से ही सत्तावान है। उसकी त्रिकाल में कोई सत्ता नहीं है। ठीक इसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म की सत्ता से ही भासित है। ब्रह्म के अतिरिक्त यह कुछ भी नहीं अनिर्वचनीय, मिथ्या है।

१—तुलनीय :

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्।
माहं जीवः परमात्मेति ज्ञातश्चेन्निर्भयो भवेत् ॥
शंकराचार्यः 'आत्मबोध', श्लोक २६

२—देखिए—विजयानन्द त्रिपाठी की टीका।

३—शङ्कराचार्य के मायावाद के प्रसंग में 'अनिर्वचनीय' शब्द के शास्त्रीय अर्थ की व्याख्या की गई है। उसी अर्थ में यह शब्द यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

इसीलिए शङ्कराचार्य कहते हैं कि माया सत् भी नहीं, असत भी नहीं और उभय रूप भी नहीं है। वह न भिन्न है न अभिन्न, न भिन्ना-भिन्न उभय रूप ही। न अंगसहित है, न अंग-रहित है और न उभयात्मिका ही है, किन्तु वह अद्भुत अनिर्वचनीया है—वह ऐसी है जो कही न जा सके—

सन्नाप्यसन्नाऽप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
सांगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनीय रूपा ॥[1]

इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट है कि तुलसी का 'मायावाद' शाङ्कर 'मायावाद' की ही प्रतिकृति है। 'गोस्वामी तुलसीदास', के लेखकद्वय श्री श्यामसुन्दर दास और डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोस्वामी जी की 'माया' को शङ्कराचार्य की 'माया' से भिन्न मानते हैं। उनका कथन है कि शङ्कर के लिए रचना भ्रम मात्र है, तुलसी के लिए यह एक तथ्य है।[2] कहा नहीं जा सकता कि उनका यह कथन कहाँ तक उचित है, एक तो गोस्वामी जी ने ही रचना को 'नट का इन्द्र-जाल' कहा है[3] दूसरे स्वतः शङ्कराचार्य भी माया को एकदम मिथ्या नहीं मानते।[4]

तुलसी ने लिखा है कि सीता ब्रह्म की मूल प्रकृति हैं। वे राम से उसी प्रकार अपृथकस्थिता हैं जिस प्रकार गिरा से अर्थ अथवा जल से वीचि—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥[5]

१—विवेक चूड़ामड़ि, श्लोक १११
२—गोस्वामी तुलसीदास ले०—बाबूश्यामसुन्दर दास और पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, पृ० १८७
३—दे० मानस, उत्तर० ७२
४—दे० सर्ववेदान्तसार संग्रह श्लोक २०५ से २०७
५—बाल० १८

वेदान्त का ब्रह्म और माया का तत्व वेदान्तियों की दृष्टि में जो कुछ भी हो, लोक-विश्वास में ये शिव-शक्ति के अनुरूप ही कल्पित हुए हैं। पुराण आदि में बहुतेरे स्थलों पर माया और ब्रह्म इस शक्ति-शक्तिमान के रूप में ही परिकल्पित हुए हैं।

पांचरात्र—सिद्धान्त के अनुसार परब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति स्वरूपतः ब्रह्म के साथ अपृथकस्थिता है[1]। शक्ति और शक्तिमान् इसलिए सदा धर्मधर्मिस्वभाव से संयुक्त हैं[2]।

काश्मीर शैव-दर्शन में अनेकशः कहा गया है कि परम शिव की मूलकारण-रूपिणी शक्ति भी परम शिव से अविनाभाव से युक्त होने के कारण नित्या है।[3] जो सच्चे शैव हैं उन्हें शक्ति और शक्तिमान्

१—अहिर्बुध्न्य संहिता—३।५

सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः॥

और भी, द्रष्टव्य, वही ६०।३
जयाख्य संहिता—६।७८
सूर्यस्य रश्मयो यद्वदूर्मयश्चाम्बुधेरिव।
सर्वैश्वर्य प्रभावेन कमला श्री पतेस्तथा॥
वही,—१३।१०५-६
ततो भगवतो विष्णोर्भासा भास्वर विग्रहात्।
लक्ष्म्यादिर्निःसृता ध्यायेत् स्फुलिंगनिचया यथा॥

२—अहिर्बुध्न्य संहिता—३।३।४३

सर्वभावात्मिका लक्ष्मीरंहता पारमात्मिका।
तद्धर्म धर्मिणी देवी भूत्वा सर्वमिदं जगत्॥

और भी वही, ३।२५
एष चैषा च शास्त्रेषु धर्मधर्मिस्वभावतः।

३—तन्त्रालोक ६।१५२

शिवशक्त्यविनाभावान्नित्यैका मूलकारणम्।

का भेद स्वीकार्य नहीं।[1] कहा गया है कि अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति जैसे अपृथक है, शिव और शक्ति भी उसी प्रकार अपृथक हैं[2]।

अब पुराणों की बात लीजिए। पुराणों में जो वर्णन उपलब्ध हैं स्पष्टतया वे तत्वपरक नहीं है फिर भी उनमें इस सम्बन्ध में गम्भीर विचार घोतित हैं। कहा गया है—

विष्णु अर्थ हैं, लक्ष्मी वाणी हैं। विष्णु बोध हैं, ये बुद्धि हैं। विष्णु स्रष्टा हैं ये सृष्टि हैं। श्री इच्छा हैं, भगवान् काम हैं। भगवान् सामस्वरूपी हैं, कमलालया उद्गीति हैं। केशव सूर्य हैं, कमलालया

१—सोमानन्द कृत शिवदृष्टि, (काश्मीर संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या ५४) ३।२-३

न शिवः शक्तिरहितो न सक्तिर्व्यतिरेकिणी ।
शिवः शक्तस्तथा भावान् इच्छया कर्तुमीहते ॥
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते ।

और भी वही ३।९०

न कदाचन तस्यास्ति कैवल्यं शक्तिशून्यकम् ।

२—विज्ञान भैरव १७।२०

एवं विधा भैरवस्य यावस्था परिगीयते ।
सा परा पररूपेण परा देवी प्रकीर्तिता ॥
शक्तिशक्तिमतोर्यद्वद अभेदः सर्वदा स्थितिः ।
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् परा शक्तिः परमात्मनः ॥
न वह्नेर्दाहिका शक्तिर्व्यतिरिक्ता विभाव्यते ।
केवलं ज्ञान-सत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने ॥
शक्त्यवस्था प्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना ।
तदासौ शिवरूपी स्यात् शैवी मुखमिहोच्यते ॥

और भी देखिए—

(क) नेत्र-तंत्र, १ । २५-२६ (का० सं० ग्र० ४६)

(ख) श्री मृगेन्द्रतंत्र (का० सं० ग्र०, ५०) १ । ३ । १४

(ग) विज्ञान भैरव— श्लोक संख्या २१

यथालोकेन दीपकस्य किरणैर्भास्किरस्य च ।
ज्ञायते दिग्विभागादि तद्वच्छक्त्या शिवः प्रिये ॥

उनकी प्रभा हैं। श्रीधर शशांक्क हैं, श्री उन्हीं की अनपायिनी कान्ति हैं। लक्ष्मी रति हैं, गोविन्द राग हैं[1]।

शिवपुराण और पद्मपुराण में भी इस प्रकार के विवरण उपलब्ध हैं।❀

'भारतवर्ष के धर्ममतों को अच्छी तरह देखने पर लगता है कि एक आदि-युगल में विश्वास भारतीय-मानस का एक आदि धर्म-विश्वास है। यह आदि-युगल विश्वास शैव नहीं है, शाक्त नहीं है, वैष्णव नहीं है, सौर गाणपत्य नहीं है यह वेदान्त नहीं है, सांख्य नहीं है, तंत्र नहीं है—वह हिन्दू भी नहीं है, बौद्ध जैन भी नहीं है—यह भारत में सर्वत्र हैं। दर्शन-सम्प्रदाय-निरपेक्ष यह विश्वास भारतीय-चिन्ता को सामान्य विशेषता है।'[2]

किसी विशेष उत्स से ही यह मत मानस में प्रकाशित हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक विशेष भारतीय दृष्टि है। भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के अन्दर यह सिद्धान्त पुष्ट हुआ है।

१—विष्णु पुराण १।८।१५-३२

❀ देखिए—शिवपुराण, वायवीय संहिता, २।२६।७७।६
और पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, २४३।३१।३७

२—देखिए—श्री राधा का क्रम विकास : डा० शशिभूषणदास गुप्ता।

जीव

जैसा कि पहले कहा जा चुका है जीवतत्व का विवेचन बाल-काण्ड में विस्तार से नहीं हो सका है। जीव-ईश्वर के भेदाभेद के सम्बन्ध में बाल-काण्ड में कोई उल्लेख नहीं है। एक अर्द्धाली मात्र में जीव का धर्म निरूपित कर दिया गया है—

हरष विषाद ग्यान अग्याना।
जीव धरम अहमिति अभिमाना॥
(बाल० ११६)

इस एक अर्द्धाली को लेकर इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि वेदान्तसूत्र तथा वेदान्त के अन्यान्य ग्रन्थों में कई स्थलों पर व्यवहार-दशा के अनुरोध पर से जीव को ईश्वर या परब्रह्म से भिन्न ही वर्णित किया गया है। उसी अभिप्राय से गोस्वामी जी ने भी यहाँ जीव को हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान और अहंकार-अभिमान का आश्रय कहा है।

भक्ति

यद्यपि शाङ्कर सिद्धान्त और भक्ति में अविरोध है और शाङ्कर विरचित भक्ति सम्बन्धी अनेक श्लोक प्राप्त हैं[1] पर शंकर-सिद्धान्त में

१—द्रष्टव्य :
(क) प्रबोध सुधाकर, १६६-६७,१८३,१९५,२०८,२५०
(ख) सर्व वेदान्त-सार-संग्रह, १२२,१५४, २७६,३२०,
(ग) प्रश्नोत्तर मालिका, ५५
(घ) तत्योपदेश, ८६-८७

भक्ति का स्थान गौड़ ही है।[१] भक्ति परक सिद्धान्तों में तुलसी रामानुजाचार्य के अधिक निकट हैं।[२]

इसके अतिरिक्त भागवत, नारद-भक्ति-सूत्र, और शाण्डिल्य सूत्र का तुलसी पर अत्यधिक प्रभाव है। पर जैसा कि पहले निवेदन किया जा चुका है, भक्ति-तत्व का विवेचन भी बाल काण्ड में विस्तार से नहीं हो सका है। बाल-काण्ड में भक्ति सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनके उत्स की चर्चा की जाती है।

कहा गया है जगत में चार प्रकार के—अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—राम भक्त हैं। इनमें ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष प्रिय है।

राम भगति जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा।
ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
(बाल० २२)

यहाँ तुलसी ने गीता के निम्नांकित श्लोकों का अनुवाद-सा कर दिया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरार्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥[3]

1—*No doubt Shankar in order to accomodate such people admitted of a personal God; and popular belief atributes to him the introduction of the worship of the Panchaatma or the five gods together, so as to displease no one. But a God was after all of an illusory and second rate importance in his system.*

—V. S. Ghate : 'The Vedanta'. P. 20-21.

२—द्रष्टव्य :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० ८७

३—भगवद्गीता ७।१६-१७

इस मनुष्य-देह की सार्थकता गोस्वामी जी ने भक्ति-साधन में ही मानी है—

जिन्ह हरि कथा सुनि नहिं काना।
श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा।
लोचन मोर पंख सम लेखा॥

ते सिर कटु तुंबरि समतूला।
जे न नमत हरि गुरु पद मूला॥

जिन्ह हरि भगत हृदय नहिं आनी।
जीवत सव समान तेइ प्रानी॥

जो नहिं करइ राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना॥

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती।
सुनि हरिचरित जो न हरषाती॥

(बाल० ११३)

गोस्वामी जी ने यह उक्ति भागवत पुराण से ली है—

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥
भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा॥
बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥
जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥
तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥[1]

---

१. भागवत २।३।२०—२४

तुलसीदास ने लिखा है कि जो सब प्रकार की कामनाओं से हीन हैं। वे भी राम भक्ति के रस में लीन रहते हैं—

सकल कामना हीन जे रामभगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥[1]
(बाल० २२)

भागवत में भी कहा गया है—

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगणो हरिः ॥

---

१. वही १।७।१०

अध्यात्म रामायण और मानस

डा० माता प्रसाद गुप्त ने एक स्थल पर लिखा है—

"मुझे विश्वास हो गया है कि जो कुछ उन्हें (तुलसी को) 'अध्यात्म-रामायाण' में सिद्धान्त रूप में मिला है उसी का उन्होंने तर्क-सङ्गत विकास किया है।"[1]

अनुसन्धान की दृष्टि से डा० साहब का मत सोलह आना सच है। तुलसी के अध्यात्मिक विचार यद्यपि बीज-रूप से प्रस्थानत्रयी तथा भागवत आदि ग्रन्थों में मिलते हैं पर उनके तर्क सम्मत विस्तार-प्रस्तार के लिए तुलसी ने 'अध्यात्म-रामायण' को ही अपना आधार बनाया। बाल-काण्ड में व्यक्त सभी दार्शनिक (Metaphysical) सिद्धान्त 'अध्यात्म-रामायण' में मिल जाएंगे। कहीं-कहीं तो दोनों की पदावली में भी आश्चर्यजनक साम्य है।

(१) राम के परमात्मत्व, निर्गुण ब्रह्मत्व तथा सगुण ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में मानस तथा अध्यात्म-रामायण में पूर्ण साम्य है।

मानस—

राम परब्रह्म हैं। समस्त-जड़ चैतन्यात्मक विश्व में इनकी व्याप्ति है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बन्दउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
(बाल० ७)

विश्व की समस्त चेतना के मूल स्रोत यही हैं—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' पृ० ३८२

सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू॥
माया धीस ग्यान गुन धामू॥
(बाल० ११७)

यही निर्गुण ब्रह्म और परात्पर नाथ हैं—

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द पर धामा॥
(बाल० १३)

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप
(बाल० २०५)

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेस पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परावर नाथ।
(बाल० २०५)

अध्यात्म रामायण—

राम पर ब्रह्म हैं। वे निर्गुण, नित्य, निर्विकल्प, आनन्दस्वरूप, निरुपाधि, सर्वव्यापक, मन तथा इन्द्रियों के अविषय और स्वयंप्रकाश हैं। मङ्गलाचरण करते हुए अध्यात्म रामायणकार कहता है—

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्॥
आनन्दसान्द्रममलं निजबोध रूपं।
सीतापतिं विदिततत्वमहं नमामि॥
(बालकाण्ड १।२)

सीता हनुमान से कहती हैं—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
(बालकाण्ड १।३२-३३)

विभीषण राम से कहते हैं—

श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तक।
कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः॥
निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः।
षड्भागरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः॥
(युद्ध ३।२८-२९)

ब्रह्मा राम को प्रणाम करते हुए कहते हैं—

नानाशास्त्रैकर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं।
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम्॥
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं।
वन्दे राम मरकतवर्णं मथुरेशम्॥
(युद्ध सर्ग १३ श्लोक १७)

स्वयं राम हनुमान से कहते हैं—

परिरम्भं हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः।
(सुन्दर० ५।६३)

सगुण ब्रह्मत्व

मानस—

माया के स्वामी होने के नाते राम 'गुणधाम' 'सगुण' ब्रह्म भी हैं।

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीश ज्ञान गुन धामू॥
(बाल० ११७)

जनक इसीलिए उन्हें निर्गुण बतलाते हुए 'गुनरासी' कहते हैं—

चिदानंदु निरगुन गुनरासी।
(बाल० २४१)

अध्यात्म रामायण—

राम अपनी माया द्वारा ही सृष्टि की रचना करते हैं और निर्गुण से सगुण हो जाते हैं।

अगस्त्य राम से कहते हैं—

सृष्टिर्लीलां यदा कर्तुं मीहसे रघुनन्दन ।
अङ्गीकरोषि माया त्वं तदा वै गुणवानिन् ॥
(अरण्य० ३।३१)

इस सगुण ब्रह्म का चरित्र साधारणतः इस प्रकार का हुआ करता है कि उसका पूरा-पूरा रहस्य ज्ञात नहीं होता। बुद्धिहीन लोग उसे देखकर मोहमुग्ध हो जाते हैं। पर जो राम स्वतः विज्ञान स्वरूप हैं वे मोह-मुग्ध नहीं हो सकते—

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा ।
तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा ।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना ।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
(बाल० ११६)

राम-विषयक मोह की यह धारणा हमारे ही भ्रम और अज्ञान का परिणाम है।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी ।
प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी ।
झँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएं ।
प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएं ॥
उमा राम बिषयक अस मोहा ।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
(बाल० ११७)

'अध्यात्म रामायण' में कहा गया है कि राम सृष्टि-प्रपंच से परे हैं। वे विज्ञान स्वरूप हैं। शंकर उमा से कहते हैं कि अज्ञ जन अपने गले में पड़े हुए कण्ठे को न जानने के कारण अपने ही हृदय में स्थित परमात्मा राम को नहीं जानते इसीलिए उनमें अज्ञानादि का आरोप करते हैं। वास्तव में जिस प्रकार सूर्य में कभी अन्धकार नहीं रहता

उसी प्रकार प्रकृत्यादि से अतीत, विज्ञानघन ज्योतिस्वरूप परमात्मा राम में भी अविद्या नहीं रह सकती। जिस प्रकार चक्कर लगाते समय मनुष्य के नेत्रों के घूमने से गृह आदि भी घूमते हुए प्रतीत होते हैं उसी प्रकार लोग अपने देह और इन्द्रिय रूप कर्त्ता के किए हुए कर्मों का आत्मा में आरोप करके मोहित हो जाते हैं। प्रकाशत्व में अव्यभिचार होने से जिस प्रकार सूर्य में रात-दिन का भेद नहीं होता—वह सर्वदा एक समान प्रकाशमान रहता है—उसी प्रकार शुद्ध चैतन्य स्वरूप भगवान राम में ज्ञान और अज्ञान दोनों कैसे रह सकते हैं? भगवान् राम में अज्ञान का लेश भी नहीं है। वे माया के अधिष्ठान हैं इसीलिए माया उन्हें मोहित नहीं कर सकती।

जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाज्ञाः।
यथा प्रकाशे न तु विद्यते रवौ ज्योतिः स्वभावे परमेश्वरे तथा।
विशुद्ध विज्ञानघने रघूत्तमे—ऽविद्या कथं स्यात्परः परात्मनि॥
यथा हि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृतं परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति॥
नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत् प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित्।
ज्ञानं तथा ज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्ध चिद्घने॥
तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम्॥
(बाल काण्ड सर्ग १ श्लोक२१–२४)

सीता (राम की योगमाया) हनुमान से कहती हैं,—

जन्म लेने के बाद विश्वामित्र की सहायता करना, उनके यज्ञ की रक्षा करना, अहल्या को शापमुक्त करना, महादेव के धनुष को तोड़ना तत्पश्चात् मेरा पाणि- ग्रहण करना, परशुराम का गर्व खण्डन करना तथा बारह वर्ष तक मेरे साथ अयोध्यापुरी में रहना, फिर दण्डकारण्य में जाना, विराध का वध करना, माया मृग रूप मारीच का मारा जाना, मायामयी सीता का हरा जाना तदनन्तर जटायु और कबन्ध का मुक्त होना, शबरी द्वारा भगवान का पूजित होना और सुग्रीव से मित्रता होना, फिर बालि का वध करना, समुद्र का पुल बंधवाना और लंकापुरी को घेर लेना तथा पुत्रों सहित दुरात्मा रावण को युद्ध में मारना एवं विभीषण को लंका का राज्य देकर पुष्पक विमान द्वारा

मेरे साथ अयोध्या लौट आना फिर राम का राज्य पद पर अभिषिक्त होना—इत्यादि समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही द्वारा हुए हैं तो भी अज्ञानी लोग उन्हें इन सर्वात्मा भगवान राम में आरोपित करते हैं (आरोपयन्ति रामोऽस्मिन्निर्विकारोऽखिलात्मानि) । परन्तु,

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानु शोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणानुगतो हि तथा विभाति ॥[1]

(२) माया ही समस्त सृष्टि की रचना स्थिति और संसार का हेतु है–यह सिद्धान्त 'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' दोनों को मान्य है ।

मानस—

लव निमेष महुँ भवन निकाया ।
रचइ जासु अनुसासन माया ॥
(बाल० २२५)

अध्यात्म रामायण—

'अध्यात्म रामायण' में स्वयं सीता कहती हैं—

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्ग स्थित्यन्तकारिणीम् ।[2]

शंकर कहते हैं कि ये सीता जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाली साक्षात् भगवान् की माया हैं ।

एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्त कारिणी ।[3]

माया से ही ब्रह्म आदि प्रजाएं उत्पन्न होती हैं ।

मानस—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा ।

अध्यात्म रामायण—

नारद राम से कहते हैं :

त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः ।[4]

१—अध्यात्म रा० बाल० सर्ग १ श्लोक ४३

२—अध्यात्म रामायण बाल० १।३३

३—वही, बाल० ५।२३

४—वही, बाल० १।११

(३) माया के स्वतः जड़त्व और राम के आश्रय से माया में क्रियाशीलत्व का सिद्धान्त दोनों को स्वीकार्य है।

मानस—

माया स्वतः जड़ है। वह राम की सत्ता पाकर ही सत्य भासती है।

जासु सत्यता ते जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥
(बाल० ११७)

× × ×

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
(बाल० १)

अध्यात्म रामायण—

माया निर्गुण राम का आश्रय पाकर ही भासमान होती है। नारद राम से कहते हैं—

त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका।[1]

अगस्त्य राम से कहते हैं कि आप ही में आश्रित तथा आप ही को विषय करने वाली माया आपकी ही शक्ति कही जाती है—

सृष्टेः प्रागेक एवासी निर्विकल्पोऽनुपाधिकः।
त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते॥[2]

(४) 'माया' राम की चेरी है। राम उसके स्वामी हैं। 'मानस' में राम को इसीलिए 'मायाधीश' कहा गया है—

मायाधीस ज्ञान गुन धामू।
(बाल० ११७)

यह माया राम से डरा करती है। कौशल्या को राम जब अपना अद्भुत और अखण्ड रूप दिखाते हैं, तो कौशल्या माया को राम से अत्यन्त भयभीत पाती हैं।

देखी माया सब विधि गाढ़ी।
अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
(मानस—बाल० २००)

१—अध्यात्म रामायण अयोध्या० १।११
२— ,, ,, अरण्य० ३।२०

अध्यात्मरामायण—

'अध्यात्मरामायण' में भी कथित है कि माया राम के अधीन है। नाना आकार धारण करने वाली माया रूपी नटी राम से डरा करती है। गुरु वसिष्ठ राम से कहते हैं कि यदि आप गुरु-ऋण से उऋण होना चाहते हैं तो मुझे यही दीजिए कि आपके अधीन रहने वाली आपकी सर्वलोकविमोहिनी माया मुझे मोहित न करे।

त्वदाधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी।
मां यथा मोहयेन्नेव तथा कुरु रघूद्वह॥
गुरु निष्कृति कामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे।[1]

कैकेयी अपना पश्चात्ताप प्रकट करते समय राम से कहती हैं—

त्वदाधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी।
त्वयैव प्रेरिताऽहंच देव कार्यं करिष्यता॥[2]

पुनः कैकेयी राम से कहती है कि सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली माया भी आपसे डरा करती है—

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां—
संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्।
देहान्बिमर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त—
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया॥[3]

(५) संसार का मिथ्यात्व दोनों में समान रूप से प्रतिपादित है—

मानस—

रजत सीप महँ भास जिमि।
जथा भानुकर बारि॥
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ।
भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
एहि विधि जग हरि आश्रित रहइ।
जदपि असत्य देत दुःख बहुइ॥
बाल० ११७-१८

---

१. अध्यात्म-रामायण अयोध्या २।३१—३२

२. वही, अयोध्या ६।५६

३. वही, अयोध्या ६।५२

अध्यात्म रामायण—

'अध्यात्म-रामायण' में कहा गया है कि जो कुछ भी इन्द्रियों का विषय है वह स्वप्न और मनोरथों के समान असत्य है। अनादि अविद्या के सम्बन्ध से स्थित यह संसार मिथ्या है।

स्वत: राम तारा से कहते हैं—

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्यहङ्केतस्तथा ।
संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसङ्कुलः ॥[1]

पुनः राम लक्ष्मण से कहते हैं—

मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले।
रज्जौ भुजङ्गवद् भ्रान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन ॥
श्रूयते दृश्यते यद्यतस्मर्यते वा नरैः सदा।
असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ ॥[2]

(६) सीता का मूलप्रकृतित्व, योगमायात्व और परमशक्तित्व 'मानस' तथा 'अध्यात्म-रामायण' में समान रूप से प्रतिपादित है।

मानस—

'मानस' के अनुसार सीता वह 'आदिशक्ति' हैं जिससे विश्व का उद्भव होता है। मनु-सतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर राम ने इसी 'आदिशक्ति' के साथ* दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया था और कहा था—

अदि शक्ति जेहिं जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोर यह माया ॥
(बाल० १५२)

सीता ब्रह्म की वह 'माया' और 'मूलप्रकृति' है जिससे जगत का उद्भव, उसकी स्थिति और उसका संहार हुआ करते हैं—

१. अध्यात्म-रामायण, किष्किन्धा० ३।२०

२. वही, अरण्य० ४।२५–२६

* आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला।
बाम भाग सोभति अनुकूला ॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई ॥
(बाल० १४८)

उद्भवस्थिति संहारकारिणीं सीता नतोऽहं रामवल्लभाम् ।

(बाल० १)

सीता राम की 'योगमाया' हैं। वे राम से उसी प्रकार अभिन्न हैं जिस प्रकार 'गिरा' से 'अर्थ' अथवा 'जल' से 'वीचि' भिन्न हुआ करते हैं —

गिरा अरथ जल बीचि सम,
कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद,
जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥
(बाल० १८)

इस लोक में राम (परम आत्मा) और सीता (मूल प्रकृति) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए समस्त संसार को राम और सीता में व्याप्त समझकर तुलसीदास सीता-राम की एक साथ वन्दना करते हैं।

सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
(बाल० ८)

अध्यात्म रामायण—

'अध्यात्म रामायण' में कहा गया है कि सीता जगत की कारण-रूपा साक्षात् जगद्रूपिणी चिच्छक्ति हैं, और जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाली हैं।

सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्ति जगदात्मिका ।[१]

स्वयं सीता कहती हैं कि मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने वाली मूल प्रकृति जानो। मैं ही निरालक्ष्य होकर इनकी सन्निधि मात्र से विश्व की रचना किया करती हूँ।

मां विद्धिमूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥[२]

१—अध्यात्म रामायण, युद्ध० ४।४०

२—वही, बाल० १।३४

सीता आदि नारायण की योगमाया हैं। विष्णु ने ब्रह्मा से कहा था कि मेरी योगमाया जनक जी के घर में सीता रूप से उत्पन्न होगी, उसको साथ लेकर मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा —

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहेतदा।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥[1]

सीता राम की परम शक्ति हैं स्वयं भगवान् राम परशुराम से कहते हैं—

उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः।
मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ॥[2]

अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि संसार में जो कुछ पुरुष-वाचक है वह सब राम है और जो कुछ स्त्रीवाचक है वह सब जानकी और इस लोक में राम-सीता से व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नारद राम से कहते हैं—

लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा।
पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन।

१—वही, बाल० २।२८
२—वही, बाल० ७।२७

सुभाषित और सूक्तियाँ

'मानस' के काव्य की प्रबन्धात्मकता पर भारतीय काव्य-शास्त्र के प्रभाव का पूरा-पूरा विचार करने के लिए कवि द्वारा प्रयुक्त 'सुभाषित' का संकेत करना अनिवार्य है।

'सुभाषित' में दीर्घ चिन्तन द्वारा प्राप्त जीवनानुभव के ज्ञानपूर्ण सारतत्व तथा राजनीतिक, नैतिक और दार्शनिक स्थिति के विधान सामान्यतया अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दिये जाते हैं।

तुलसीदास सूक्ति और सुभाषित का व्यापक उपयोग करते हैं जिसके प्रयोग की परंपरा भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन है। वे प्रायः कहानियों को सजीव बना देते हैं। तुलसी ने अधिकांश सुभाषित और सूक्तियों को सुभाषित रत्न भाण्डागार, पञ्चतन्त्र, भर्तृहरिशतक, भागवत आदि ग्रन्थों से लिया है। यहाँ कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं:—

सुभाषित रत्न भाण्डागार—चतुर्थभाण्ड, श्लोक ६

साधूनां दर्शने पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधु समागमः॥

मानस—बाल०, २

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

× × ×

मनुस्मृति—१।२१

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममौ॥

मानस—बाल०, ६

भलेउ पोच सब विधि उपजाए।
गनि गुन दोष वेद बिलगाए॥

× × ×

पञ्चतन्त्र—१।८

सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।

मानस—बाल०, ६

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ।

× × ×

मेघदूत—पूर्व० श्लोक ६

धूम ज्योतिः सलिलमरूतां सन्निपातः क्व मेघः ।

मानस—बाल०, ७

सोइ जल अनल अनिल संघाता ।
होइ जलद जग जीवन दाता ॥

× × ×

सुभाषित रत्न भाण्डागार—चतुर्थ भाण्ड, श्लोक ११४

मासि मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोरुभयोरपि ।
तत्रैकः शुक्लपक्षे भूयशः पुण्यैरवाप्यते ॥

मानस बाल०,७ (ख)

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥

× × ×

सुभाषित रत्न भाण्डागार—तृतीय भाण्ड, श्लोक ४

कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥

मानस—बाल०, ४७

राम कथा ससि किरन समाना ।
संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥

× × ×

शिशुपाल वध—८।६

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विप्लवमेति...

मानस—बाल०, ५२

विधि विपरीत भलाई नाहीं ।

× × ×

सुभाषित रत्न भाण्डागार—चतुर्थकाण्ड, श्लोक १०।११

को अर्थान्प्राप्य न गर्वितः ॥

मानस—बाल०,६०

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं ।
प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ॥

शिवपुराण—रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड ८।२०

प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदो ऽत्यप्रभौ हि सः ।
रवि पावक गंगानां तत्र ज्ञेया निदर्शना ॥

मानस—बाल०, ६६

समरथ कहं नहिं दोस गोसांई ।
रवि पावक सुरसरि की नांई ॥

× × ×

सुभाषितरत्न भण्डागार—चतुर्थकाण्ड, श्लोक २६८

दिवा पश्यति नोलूको काको नक्तं न पश्यति ।
अपूर्वः कोपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति ॥

मानस—बाल०, ८५

मदन अंध व्याकुल सब लोका ।
निसि दिन नाहिं अवलोकहिं कोका ॥

× × ×

भागवत—२।३।१६-२४

बिले बतोरुक्रमविक्रमान ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिव्हासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ।

भारः परं पट्टकिरीट जुष्ट-
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ न कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

बर्हायिते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षितो ये ॥
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यो ।
जीवंछवो भागवता अंघ्रिरेणु
न जातु मर्त्यो अभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुल्याः
श्वसंछवो वस्तुनं वेदगन्धम् ॥
तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणै र्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

मानस - बाल०, ११३

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना ।
श्रवनरंध्र अहिभवन समाना ॥

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा ।
लोचन मोरपंख कर लेखा ॥

ते सिर कटु तुंबरि समतूला ।
जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥

जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी।
जीवत सव समान तेहि प्रानी ॥

जे नहिं करइ राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती ।
सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥

गोस्वामी जी ने बन्दनापरक दोहा—चौपाइयों का संस्कृत श्लोकों से कहीं शब्दशः अनुवाद और कहीं छायानुवाद कर दिया है। नीचे उदाहरण दिये जाते हैं—

महाभारत[१]—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥

मानस—बाल०, १ २

मूक होइ वाचाल पङ्गु चढ़ै गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयालु, द्रवउ सकल कालिमल दहन ॥

× × ×

नलचम्पू—१।११

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ।
सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ॥

मानस—बा०, १४ घ

बंदौ मुनिपद कंज रामायन जिन निरमयउ ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥

× × ×

सुभाषित रत्न भण्डागार—प्रथम भाण्ड, श्लोक ४९

अंजलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो ! सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥

मानस—बाल०, ३ (क)

बंदौ संत समान चितहित अनहित नहिं कोउ ।
अंजिलिगत सुभसुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोउ ॥

पर यह केवल अनुवादों की तालिका ही नहीं है। इन अनुवादों के भीतर से कवि का विकास भी देखना चाहिए। गोस्वामी जी ने 'उपजहिं अनत-अनत छबि लहहिं' की अपनी सूक्ति को अपने अनुवादों में पूर्णतः चरितार्थ किया है। आनन्दवर्धनाचार्य ने ठीक ही लिखा है—

दृष्टिपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।
सर्वे नवाइवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः ॥

१— गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित गीता की शाङ्कर-भाष्य टीका में उद्धृत ।

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत

(क) महाकाव्य और खंड-काव्य

(१) वाल्मीकि रामायण
(२) महाभारत
(३) रघुवंश
(४) कुमार सम्भव
(५) भट्टिकाव्य
(६) मेघदूत

(ख) साम्प्रदायिक रामायण

(१) अध्यात्म रामायण
(२) आनन्द रामायण
(३) अद्भुत रामायण

(ग) नाटक

(१) जानकी हरण
(२) मैथिली कल्याण
(३) प्रसन्न राघव
(४) बाल रामायण
(५) हनुमन्नाटक
(६) महावीर चरित
(७) अनर्घ राघव

(घ) पुराण तथा उपपुराण

(१) भागवत पुराण
(२) स्कन्द पुराण
(३) नृसिंह पुराण
(४) पद्म पुराण
(५) ब्रह्म पुराण

(६) वह्नि पुराण
(७) शिवपुराण
(८) वामन पुराण
(९) ब्रह्मवैवर्त्त पुराण
(१०) विष्णु पुराण
(११) कूर्म पुराण
(१२) वाराह पुराण

(ङ) उपनिषद् ग्रन्थ
(१) बृहदारण्यक उपनिषद्
(२) ईशोपनिषद्
(३) कठोपनिषद्
(४) मुन्डकोपनिषद्
(५) श्वेताश्वतरोपेनिषद्
(६) छान्दोग्य उपनिषद्
(७) कठवल्युपमिषद्
(८) मैत्री उपनिषद्
(९) प्रश्नोपनिषद्
(१०) रामतापनी उपनिषद्

(च) आगम ग्रन्थ
(१) तंत्रालोक
(२) शिवदृष्टि
(३) विज्ञान भैरव
(४) नेत्रतंत्र
(५) श्री मृगेन्द्रतंत्र

(छ) दर्शन ग्रन्थ
(१) ब्रह्मसूत्र : शङ्कर और रामानुज भाष्य
(२) गौड़पाद कारिका
(३) सिद्धान्त लेश
(४) वेदान्त सार
(५) दृग्दृश्य विवेक

(६) आत्मबोध
(७) विवेक चूडामणि
(८) प्रबोध सुधाकर
(९) प्रश्नोत्तर मालिका
(१०) तत्वोपदेश

(ज) स्फुटग्रन्थ
(१) रामरहस्य
(२) सत्योपाख्यान
(३) कथा सरित्सागर
(४) सुभाषित रत्न भाण्डागार
(५) देवी भागवत
(६) भगवद्‌गीता
(७) मनुस्मृति
(८) पञ्च तंत्र
(९) शिशुपाल वध
(१०) नलचम्पू
(११) अहिर्बुध्न्य संहिता

हिन्दी

(१) डा० कामिल बुल्के—राम कथा
(२) ए० पी० वारान्निकोव—मानस की (रूसी) भूमिका
(३) डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास
(४) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका
(५) डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास
(६) डा० श्री कृष्णलाल—मानस दर्शन
(७) डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—मानस में राम कथा
(८) डा० शशिभूषण दास गुप्ता—श्री राधा का क्रम-विकास
(९) बाबू श्यामसुन्दर दास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—गोस्वामी तुलसी दास

(१०) पाण्डेय रामावतार शर्मा—भारतीय ईश्वरवाद
(११) तुलसी ग्रन्थावली भाग ३—प्रकाशक ना० प्र० स०, काशी
(१२) श्री रामदास गौड़ एम० ए०—हिन्दुत्व
(१३) प्रो० जगन्नाथ राय एम० ए०—रामचरित मानस की कथावस्तु

ENGLISH

(1) R. C. Hazra—Indian culture
(2) R. D. Ranade—A constructive survey of Upanishdic philosophy.
(3) J. A. Javob—Hindu Pantheism.
(4) Prabhudatt Sastri—The doctrine of Maya.
(5) A. Buch—Philosophy of Sankar.
(6) V. S. Ghate—The Vedanta
(7) Madonell—India's Past.

मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी।